अथ त्रयोदशं काण्डम्

इस काण्ड में 'ब्रह्मा' ऋषि है। यह उत्तम सात्त्विक गति में भी सर्वप्रथम है 'ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च'। 'उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः'॥ यह 'रोहितः आदित्यः' है। शरीर के दृष्टिकोण से यह रोहित है। (रोहितं=Blood, अस्य अस्ति) रुधिर-सम्पन्न तेजस्वी है तथा मस्तिष्क के दृष्टिकोण से यह आदित्य है—ज्ञानसूर्य से दीप्त मस्तिष्करूप द्युलोकवाला। यही आदर्श पुरुष है। इस काण्ड का देवता यह 'रोहित आदित्य' है। अध्यात्म में यह रोहित आदित्य 'तेजस्वी व ज्ञानी' है। इस रोहित आदित्य का चित्रण देखिए—

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अप्सु अन्तः

उदेहि॑ वाजिन्यो अ॒प्स्व१॒॑न्तरि॒दं रा॒ष्ट्रं प्र वि॑श सू॒नृता॑वत्।
यो रोहि॑तो॒ विश्व॑मि॒दं ज॒जान॒ स त्वा॑ रा॒ष्ट्राय॒ सुभृ॑तं बिभर्तु॥ १॥

१. हे **वाजिन्**=शक्तिशालिन्! **यः अप्सु अन्तः**=जो तू सदा कर्मों के अन्दर रहनेवाला है, वह तू **उदेहि**=(उत् आ इहि) सब प्रकार से उन्नत हो। तेरे लिए एक ही नियम है—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' तूने यहाँ कर्म करते हुए ही जीवन यापन करना है। तू **इदं राष्ट्रम्**=अपने इस राष्ट्र में **सुनृतावत् प्रविश**=प्रिय, सत्य वाणीवाला होकर प्रवेश कर। आचार्यकुल से समावृत्त होने पर तुझे सर्वप्रथम यही उपदेश दिया गया था कि **'सत्यं वद'**=सत्य ही बोलना। २. **यः**=जो **रोहितः**=अतिशयेन तेजस्वी अथवा सदा से वर्धमान प्रभु हैं **इदं, विश्वम् जजान**=इस विश्व को उत्पन्न करते हैं। **सः**=वे प्रभु **त्वा**=तुझे **राष्ट्राय**=इस राष्ट्र के लिए **सुभृतं बिभर्तु**=सम्यक् भरण किये गये को धारण करें। प्रभुकृपा से माता के द्वारा तेरे जीवन में 'चरित्र' का भरण हो, पिता द्वारा 'शिष्टाचार' का भरण किया जाए तथा आचार्य द्वारा 'ज्ञान' का भरण हो। इसप्रकार सुभृत तू राष्ट्र के उत्थान का कारण बने।

भावार्थ—एक पुरुष सदा क्रियाशील जीवनवाला होकर उन्नत हो। प्रिय, सत्य वाणीवाला बनकर राष्ट्र में प्रवेश करे। प्रभुकृपा से यह 'माता-पिता, आचार्य' द्वारा सुभृत होकर राष्ट्र का भरण करनेवाला बने।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उद् वाजः आगन्

उद्वा॑ज॒ आ ग॒न्यो अ॒प्स्व१॒॑न्तर्वि॑श॒ आ रो॑ह॒ त्वद्योन॑यो॒ याः।
सोम॑ं दधा॒नोऽप ओष॑धीर्गा॒श्चतु॑ष्पदो द्वि॒पद॒ आ वे॑शये॒ह॥ २॥

१. **यः अप्सु अन्तः**=जो तू सदा कार्यों में निवासवाला है, वह **वाजः**=शक्तिशाली तू **उद् आगन्**=उन्नत—उदित—उन्नत हुआ है। **त्वत् योनयः याः विशः**=तेरे घर में रहनेवाली जो प्रजाएँ हैं, उन्हें **आरोह (आरोहय)**=उन्नत करनेवाला बन। २. **यः सोमं दधानः**=जो तू सोम=शक्ति का धारण करनेवाला है, वह तू **अपः ओषधीः गाः**=जलों, ओषधियों तथा गोदुग्ध का सेवन

करनेवाला बन (गौः=गोदुग्ध)। **इह**=यहाँ इस घर में **चतुष्पदः द्विपदः आ वेशय**=चार पाँववाले गौ आदि पशुओं व मनुष्यों का तू प्रवेश करानेवाला हो—सम्यक् निवास करानेवाला हो।

भावार्थ—कर्त्तव्य कर्मों में तत्पर बनकर हम शक्तिशाली बनते हुए उन्नत हों। घर में सबकी उन्नति के लिए यत्नशील हों। शरीर में शक्ति का रक्षण करते हुए जलों, ओषधियों, वनस्पतियों व गोदुग्ध का ही सेवन करें। घर में गौओं व सब घरवालों का ध्यान करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मरुतः**॥ छन्दः—**जगती**॥

उग्राः पृश्निमातरः

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
आ वो रोहितः शृणवत्सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः॥ ३॥

१. **यूयम्**=तुम **उग्राः**=तेजस्वी बनो, **पृश्निमातरः** (संस्पृष्टाभासाम्=पृश्निः) ज्ञान-ज्योतियों से स्पृष्ट इस वेदवाणी को अपनी माता के समान जानो—उसकी प्रेरणा के अनुसार कार्य करते हुए उत्तम जीवनवाले बनो। **रुद्रेण युजा**=शत्रुविद्रावक प्रभु के साथ **शत्रून् प्रमृणीत**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कुचल डालो। २. **रोहितः**=वे तेजपुञ्ज अथवा सर्वतोवृद्ध प्रभु **वः आशृणवत्**=तुम्हारी प्रार्थना को सुनें—तुम प्रभु का आराधन करनेवाले बनो। **सुदानवः**=शत्रुओं का खूब ही (दाप् लवने) नाश करनेवाले होओ। **त्रिषप्तासः**=कर्म, ज्ञान व उपासनारूप त्रयी में 'दो कानों, दो नासिका-छिद्रों, दो आँखों व मुख' रूप (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) सप्तर्षियों को प्रवृत्त करनेवाले बनो। **मरुतः**=मितरावी—कम बोलनेवाले—कर्मवीर, नकि वाग्वीर बनो तथा **स्वादुसंमुदः**=घर में स्वादिष्ट पदार्थों का मिलकर (सम्) आनन्द लेनेवाले होओ।

भावार्थ—तुम्हारा शरीर तेजस्वी हो, मस्तिष्क में तुम ज्ञान की रुचिवाले बनो। प्रभु के उपासक बनकर हृदय में स्थित कामादि शत्रुओं को कुचल डालो। प्रभु का आराधन करते हुए शत्रुओं को कुचल डालो। कान आदि इन्द्रियों को 'ज्ञान, कर्म, उपासना' में प्रवृत्त करो। मितरावी बनो तथा स्वादिष्ट पदार्थों का मिलकर आनन्द लेनेवाले होओ। अकेले मत खाओ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

ब्रह्माण्डरूप राष्ट्र का निर्माण

रुहो रुरोहु रोहितु आ रुरोहु गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम्।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन्षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः॥ ४॥

१. **रोहितः**=वह सदा से प्रवृद्ध प्रभु **रुहः रुरोह (रुह् प्रादुर्भावे)**=सब सृष्टि की उत्पत्ति की सामग्रियों को जन्म देते हैं। प्रकृति से 'महतत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्राएँ, इन्द्रियों व पञ्चस्थूलभूतों' को जन्म देते हैं। **जनीनां गर्भः**=सब उत्पादक सामग्रियों को गर्भ में धारण करनेवाला वह प्रभु **जनुषां उपस्थं आरुरोह**=सब उत्पन्न होनेवाले पदार्थों को गोद में आरोहन किये हुए हैं—सब उत्पन्न पदार्थों के अन्दर व्याप्त हैं। २. **ताभिः संरब्धम्**=उन सब उत्पादक शक्तियों से युक्त (closely joined) उस प्रभु को **षट् उर्वीः**=ये छह विशाल दिशाएँ **अनुअविन्दन्**=व्याप्त किये हुए हैं—इन सब विस्तृत दिशाओं में वे व्याप्त हैं। **गातुं प्रपश्यन्**=मार्ग को प्रकर्षेण दिखलाता हुआ वह प्रभु (प्रपश्यन्=प्रदर्शयन्) **इह**=यहाँ **राष्ट्रम्**=इस ब्रह्माण्डरूप राष्ट्र को **आहाः**=प्राप्त कराता है (आहरत्) इस ब्रह्माण्डरूप राष्ट्र को इस रूप में लानेवाले वे प्रभु ही हैं।

भावार्थ—वे प्रभु सृष्टिनिर्माण की सब सामग्रियों को जन्म देते हैं। इन सामग्रियों को अपने

अन्दर धारण करते हुए वे सब पदार्थों में विद्यमान हैं। सब उत्पादक शक्तियों से युक्त प्रभु सब दिशाओं में व्याप्त हैं। वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर-नीचे सर्वत्र विद्यमान हैं। हम सब के लिए मार्ग दिखलाते हुए वे प्रभु ब्रह्माण्डरूप राष्ट्र को उत्पन्न करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

व्यास्थन् मृधः

आ तें राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्या ऽस्थन्मृधो अभयं ते अभूत्॥
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः॥ ५॥

१. हे जीव! **रोहितः**=वह सदा से वृद्ध प्रभु **ते**=तेरे लिए **इह**=यहाँ **राष्ट्रम्**=इस ब्रह्माण्ड राष्ट्र को **आ आहार्षीत्**=प्राप्त कराते हैं—जीव की उन्नति के लिए ही प्रभु ने सृष्टि को रचा है। वे प्रभु ही जीव के **मृधः**=हिंसक काम-क्रोधादि शत्रुओं को **वि आस्थत्**=(असु क्षेपणे) सदूर विनष्ट करते हैं। हे जीव! उस प्रभु की गोद में **ते अभयं अभूत्**=तेरे लिए अभय हो गया है। २. **तस्मै ते**=प्रभु की गोद में रहनेवाले तेरे लिए **द्यावापृथिवी**=ये पिता व मातारूप द्युलोक व पृथिवीलोक **इह**=यहाँ **शक्वरीभिः रेवतीभिः**=शक्तियों से युक्त सम्पत्तियों के द्वारा **कामं दुहाथाम्**=सब काम्य पदार्थों का दोहन करें। ये द्यावापृथिवी जीव को शक्तियुक्त सम्पत्तियाँ प्राप्त कराएँ और उन्नति के लिए आवश्यक सब पदार्थों को सिद्ध करें।

भावार्थ—प्रभु इस ब्रह्माण्डरूप राष्ट्र को बनाते हैं। उपासक के कामादि शत्रुओं को विनष्ट करके उसे अभय प्राप्त कराते हैं। इस उपासक को ये द्यावापृथिवी शक्ति व सम्पत्ति प्राप्त कराते हुए सब इष्ट पदार्थों को देते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'उत्पादक व धारक' प्रभु

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन॥ ६॥

१. **रोहितः**=वह सदा से प्रवृद्ध तेजोमय प्रभु **द्यावापृथिवी जजान**=द्युलोक व पृथिवीलोक को—तदन्तरवर्ती सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जन्म देते हैं। **तत्र**=उस ब्रह्माण्ड में **परमेष्ठी**=परम स्थान में स्थित प्रभु **तन्तुं ततान**=(तन्तु offspring, issue, race, cobweb) प्राणिजातियों को—शरीरों के जाल को विस्तृत करते हैं। प्रभु सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, उसमें विविध प्राणियों के जाल का विस्तार करते हैं। २. **तत्र**=उस विस्तृत तन्तु में—प्राणिमात्र के हृदय में **एकपादः अजः**=एक चाल से चलनेवाले, सम्पूर्ण संसार को गति देनेवाले एकरस प्रभु **शिश्रिये**=आश्रय करते हैं। सबके हृदयों में प्रभु का निवास है। वे प्रभु ही **बलेन**=अपनी शक्ति से **द्यावापृथिवी अदृंहत्**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को—द्युलोक व पृथिवीलोक को दृढ़ किये हुए हैं। प्रभु ही सारे ब्रह्माण्ड का धारण कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु सारे ब्रह्माण्ड को जन्म देते हैं। विविध प्रजातन्तु का उसमें विस्तार करते हैं। सबको गति देनेवाले वे एकरस प्रभु सबके हृदयों में आसीन हैं। सारे ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति से धारण किये हुए हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत्तेन स्व ऽस्तभितं तेन नाकः।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन्॥ ७॥

१. **रोहितः**=वह तेजोमय प्रभु **द्यावापृथिवी अदृंहत्**=द्युलोक व पृथिवीलोक को दृढ़ करते हैं। बल से उनका धारण करते हैं। **तेन**=उस प्रभु ने ही **स्वः स्तभितम्**=स्वर्गलोक को थामा है, **तेन नाकः**=मोक्षलोक को धारण करनेवाले भी वे प्रभु ही हैं। २. **तेन**=उस प्रभु ने ही **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष को व **रजांसि**=लोकों को **विमितः**=विशेष मानपूर्वक बनाया है। **तेन**=उस प्रभु के आश्रय से ही **देवाः**=देववृत्ति के लोग **अमृतं अन्वविन्दन्**=अमृत को—मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु की शक्ति से ही द्यावापृथिवी दृढ़ किये गये हैं। प्रभु ने ही स्वर्ग व मोक्ष को थामा हुआ है। प्रभु ही अन्तरिक्ष व विविध लोकों को मानपूर्वक बनाते हैं। प्रभु के आश्रय से ही देव अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**भूरिक्त्रिष्टुप्**॥

तदैक्षत बहु स्याम्

वि रोहितो अमृशद्विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन॥ ८॥

१. **रोहितः**=उस तेजोमय प्रभु ने **प्ररुहः रुहः च**=इस संसार-वृक्ष की ऊपर-नीचे फैली हुई शाखाओं को (अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः) **समाकुर्वाणः**=सम्यक् उत्पन्न करने के हेतु से **विश्वरूपं वि अमृशत्**=इस ब्रह्माण्ड के रूप का विमर्श किया। 'ब्रह्माण्ड को कैसे बनाना है', यह विचार किया—तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय इति। २. **महता महिम्ना**=अपनी महान् महिमा से **दिवं रुढ्वा**=तेरे मस्तिष्करूप द्युलोक में आरोहण करके (अर्थात् तेरे मस्तिष्क में प्रभु की महिमा ही व्याप्त हो) वे प्रभु **ते राष्ट्रम्**=तेरे शरीररूप राष्ट्र को **पयसा**=शक्तियों के आप्यायन तथा **घृतेन**=ज्ञानदीप्ति से **समनक्तु**=सम्यक् अलंकृत करें। तू सदा प्रभु की महिमा का चिन्तन कर और इसप्रकार तेरी शक्तियों व ज्ञान का वर्धन हो।

भावार्थ—प्रभु ने विविध शाखाओं से व्याप्त इस संसार-वृक्ष के निर्माण का विस्तार किया, जब हम उस निर्माता की महिमा का मस्तिष्क में विचार करते हैं तब वे प्रभु हमारी शक्तियों व ज्ञान का वर्धन करके हमें अलंकृत जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

रुहः प्ररुहः आरुहः

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य॥ ९॥

१. **याः**=जो **ते**=तेरे द्वारा निर्मित इस संसार-वृक्ष की **रुहः प्ररुहः**=नीचे-ऊपर फैली हुई शाखाएँ हैं, **यः**=जो **ते**=तेरे द्वारा कृत ये शाखाएँ **आरुहः**=समन्तात् उत्पन्न हुई-हुई हैं, **याभिः**=जिनसे **दिवम्**=द्युलोक व **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष को **आपृणासि**=तूने समन्तात् पूर्ण किया हुआ है। **तासां ब्रह्मणा**=उनके ज्ञान के द्वारा तथा **पयसा**=आप्यायनशक्ति के द्वारा **वावृधानः**=खूब ही वृद्धि को प्राप्त कराता हुआ तू **रोहितस्य**=अपनी शक्तियों का प्रादुर्भाव करनेवाले पुरुष के **विशि**=प्रजा में व **राष्ट्रे**=राष्ट्र में **जागृहि**=जागरित हो। हे प्रभो! रोहित की प्रजा व राष्ट्र का आप रक्षण कीजिए। मनुष्य रोहित बनने का प्रयत्न करे—बढ़ी हुई शक्तियोंवाला—तेजस्वी। प्रभु उसका रक्षण क्यों न करेंगे?

भावार्थ—यह संसार-वृक्ष नीचे-ऊपर चारों ओर फैली हुई शाखाओंवाला है। इसका ज्ञान

हमारे उत्थान के लिए आवश्यक है। यह ज्ञान हमारा आप्यायन करनेवाला बनता है। हम 'रोहित' बनकर प्रभु के रक्षणीय होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

संमाता वत्सः रोहितः

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः॥ १०॥

१. हे प्रभो! **याः**=जो **ते विशः**=तेरी प्रजाएँ **तपसः संबभूवुः**=तप के साथ मिलकर होती हैं, अर्थात् जो प्रजाएँ तपस्वी जीवनवाली होती हैं **ताः**=वे प्रजाएँ **इह**=यहाँ—इस जीवन में **वत्सम्**=(वसति) सर्वत्र निवासवाले (वदति) वेदज्ञान का उपदेश देनेवाले प्रभु को तथा **गायत्रीम्**=प्रभु से दी जानेवाली (गयाः प्राणः, तान् तत्रे) प्राणों की रक्षिका वेदवाणी के **अनु अगुः**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। ये तपस्वी प्रभु का स्मरण करते हैं और वेदवाणी से कर्त्तव्य-ज्ञान प्राप्त करके उसका आचरण करते हैं। हे प्रभो! **ताः**=वे प्रजाएँ **शिवेन मनसा**=कल्याणकर मन से **त्वा विशन्तु**=तुझमें प्रवेश करें। इन प्रजाओं को वह प्रभु **अभ्येतु**=आभिमुख्येन प्राप्त हो जो **संमाता**=सम्यक् निर्माण करनेवाला है, **वत्सः**=सर्वव्यापक है व वेदवाणी का उच्चारण करनेवाला है, **रोहितः**=सदा वृद्ध व तेजस्वी है।

भावार्थ—हम तपस्वी जीवनवाले हों, प्रभु-स्मरण करें, वेदवाणी को अपनाएँ, शिव मनवाले बनकर प्रभु में प्रवेश करनेवाले हों। प्रभु 'संमाता हैं, वत्स हैं, रोहित हैं'। इसप्रकार स्मरण करते हुए हम भी निर्माण करनेवाले हों। ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करें व तेजस्वी बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अधि नाके अस्थात्

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपाणि जनयन्युवा कविः।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि॥ ११॥

१. **ऊर्ध्वः**='सत्त्व, रज, तम' रूपगुणवाली त्रिगुणमयी प्रकृति को धारण करता हुआ भी उससे ऊपर उठा हुआ '**भूतभृन्न च भूतस्थः**' **रोहितः**=तेजस्वी, सदा वृद्ध प्रभु **नाके**=मोक्षसुख में **अधि अस्थात्**=अधिष्ठातृरूपेण वर्तमान हैं। वे प्रभु **विश्वा रूपाणि जनयन्**=सब रूपों को प्रादुर्भूत करते हैं। **युवा**=सब बुराइयों को दूर करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ हैं—सृष्टि के आरम्भ में वेदज्ञान के रूप में सब सत्यविद्याओं का उपदेश करते हैं। २. वह **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **तिग्मेन ज्योतिषा**=तीव्र ज्योति से **विभाति**=दीप्त हैं—वहाँ प्रकाश-ही-प्रकाश है। 'आदित्यवरुणं तमसः परस्तात्'—अन्धकार से परे हैं। वे प्रभु ही **तृतीये रजसि**=तृतीय लोक में—'तृतीये धामन्' तम व रजस् से ऊपर उठकर सत्त्व में पहुँचने पर—पृथिवी व अन्तरिक्ष से ऊपर उठकर द्युलोक में पहुँचने पर—पाषाणों की निष्क्रियता व वायु की चंचलता से ऊपर उठकर सूर्य की दीप्ति में पहुँचने पर **प्रयाणि चक्रे**=हमारे लिए सब आनन्दों को करते हैं।

भावार्थ—प्रभु मोक्ष में अधिष्ठातृरूपेण वर्तमान हैं। सब रूपों को प्रादुर्भूत करते हुए बुराइयों को हमसे दूर करके अच्छाइयों को मिलाते हुए क्रान्तप्रज्ञ वे प्रभु हैं। तीव्र ज्योति से प्रकाशमान वे प्रभु ही मोक्षसुखों को प्राप्त करानेवाले हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

सोमपृष्ठः सुवीरः

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः।
मा मा हासीन्नाथितो नेत्त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि॥ १२॥

१. **सहस्रशृङ्गः**=सूर्य के समान सहस्रों शृङ्गरूप किरणों से युक्त **वृषभः**=सब सुखों का वर्षण करनेवाला **जातवेदाः**=सर्वज्ञ **घृताहुतः**=(घृतं आहुतं येन) सर्वत्र ज्ञानदीप्ति देनेवाला हृदयस्थरूपेण ज्ञान का प्रकाश देनेवाला **सोमपृष्ठः (पृष सेचने)**=शक्ति को उपासकों में सिक्त करनेवाला **सुवीरः**=उत्तम वीर—शत्रुओं को सम्यक् कम्पित करनेवाला **नाथितः**=प्रार्थना किया हुआ वह प्रभु **मा**=मुझे **मा हासीत्**=न छोड़े जाए। २. हे प्रभो! **न इत् त्वा जहानि**=न ही मैं आपको छोड़ जाऊँ—मैं आपसे दूर न हो जाऊँ। आप मेरे लिए **गोपोषं च धेहि**=ज्ञान की वाणियाँ का पोषण धारण कीजिए **च**=तथा **वीरपोषम्**=वीरता का पोषण धारण कीजिए। आपकी कृपा से मैं वीर और विज्ञानी बनूँ। उत्तम गौ और वीर सन्तानोंवाला बनूँ।

भावार्थ—हे प्रभो! आप प्रकाशमय व शक्तिसम्पन्न हैं। मैं आपकी आराधना करता हुआ आपसे दूर न होऊँ। आप मुझे ज्ञानी व वीर बनाएँ। मुझे गौओं व वीर सन्तानों से युक्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अतिशक्वरगर्भातिजगती**॥

सामित्यै

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु॥ १३॥

१. **रोहितः**=वह तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु **यज्ञस्य जनिता मुखं च**=यज्ञ को जन्म देनेवाला व इसका प्रवर्तक है—मुखिया है। सर्वप्रथम सर्वमहान् यज्ञ के करनेवाले प्रभु ही हैं। इस **रोहिताय**=तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु के लिए **वाचा श्रोत्रेण मनसा**=वाणी, श्रोत्र व मन से **जुहोमि**=मैं अपना अर्पण करता हूँ। मैं वाणी से प्रभु के स्तोत्रों का गायन करता हूँ, मेरे कान प्रभुस्तोत्रों का ही श्रवण करते हैं और मन से मैं प्रभु के गुणों व महिमा का ही स्मरण व चिन्तन करता हूँ। २. इसप्रकार **सुमनस्यमानाः**=उत्तम मनवाले होते हुए **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **रोहितं यन्ति**=तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु को प्राप्त करते हैं। **सः**=वह रोहित प्रभु **मा**=मुझे **रोहैः**=सब प्रकार के आरोहणों के द्वारा—शरीर के स्वास्थ्य, मन की निर्मलता व बुद्धि की तीव्रता के द्वारा **सामित्यै**=(सम् इति) अपने साथ मेल के लिए—ब्रह्मसंस्पर्श के लिए **रोहयतु**=पृथिवी से अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से द्युलोक में, द्युलोक से ब्रह्मलोक में आरूढ़ करे। 'पृष्ठात् पृथिव्या-हमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहं दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्'। 'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते'।

भावार्थ—प्रभु यज्ञों के उपदेष्टा हैं। यज्ञों को करते हुए तथा उन यज्ञों को प्रभु के प्रति अर्पण करते हुए हम प्रभु को प्राप्त करें, उन्नत होते हुए ब्रह्मसंस्पर्शवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिपदापुरः-परशाक्वराविपरीतपादलक्ष्मापङ्क्तिः**॥

यज्ञ व तेजस्विता

रोहितो यज्ञं व्य ∫ दधाद्विश्वकर्मणे तस्मात्तेजांस्युप मेमान्यागुः।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि॥ १४॥

१. **रोहितः**=उस तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु ने **विश्वकर्मणे**=इस सृष्टिरूप कर्म के लिए **यज्ञं व्यदधात्**=यज्ञ का विधान किया। यज्ञसहित ही प्रजाओं को जन्म देकर यह कहा कि इस यज्ञ से ही तुम फूलो-फलोगे। यही तुम्हारी इष्टकामनाओं को पूर्ण करेगा। प्रभु द्वारा विहित **तस्मात्**=उस यज्ञ से ही **इमानि तेजांसि**=ये तेज **मा**=मुझे **उप आगुः**=समीपता से प्राप्त होते हैं। यज्ञ से विपरीत भोगवृत्ति है। यह भोगवृत्ति ही सब तेजों के विनाश का कारण बनती है। २. हे प्रभो! **अधि मज्मनि**=(मज्म बलनाम-नि० २.९) बल के निमित **ते भुवनस्य नाभिम्**=आपके इस यज्ञ को—भुवननाभि को **'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' वोचेयम्**=अपने जीवन से कहूँ, अर्थात् यज्ञशील बनकर बल व तेज को प्राप्त करूँ।

भावार्थ—यज्ञ ही सृष्टिचक्र का आधार है। यही हमें तेजस्वी बनाता है। यज्ञ से विपरीत भोगवृत्ति तेजोविनाश का कारण बनती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अतिजागतगर्भापराजगती**॥

बृहती, पङ्क्तिः, ककुप्

आ त्वा रुरोह बृहत्यू३ त पङ्क्तिरा ककुब्वर्चसा जातेवदः।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह॥ १५॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जीवन से यज्ञ का प्रतिपादन करनेवाले—यज्ञमय जीवनवाले **त्वा**=तुझे **बृहती आरुरोह**=बृहती आरोहण करती है। 'वाग्वै बृहती' (श० १४.४.१.२२) यह वाग्रूप बृहती तुझे प्राप्त होती है। वेदवाणी द्वारा प्राप्त ज्ञान तुझे अलंकृत करता है **उत**=और **पङ्क्तिः**=('पङ्क्तिर्विष्णोः पत्नी' गो० उ० २.९) विष्णु की पत्नी 'लक्ष्मी' तुझे मातृरूपेण प्राप्त होती है। इसके द्वारा तेरे सारे भौतिक कार्य शोभा के साथ चलते हैं। हे **जातवेदः**=उत्पन्न ज्ञानवाले (विद् ज्ञाने) तथा उत्पन्न धनवाले (विद् लाभे) उपासक! तुझे **वर्चसा**=वर्चस के साथ **ककुप् आ (रोह)**=प्राणो वै ककुप् छन्दः श० ८.५.२.४ प्राणशक्ति आरूढ़ होती है। तू प्राणशक्ति-सम्पन्न बनकर नीरोग व सुन्दर जीवनवाला होता है। २. **त्वा**=तुझे **उष्णिहा अक्षरः**=(आयुर्वा उष्णिक्-ऐ०१.५) जिसमें शक्ति का क्षरण (विनाश) नहीं हुआ ऐसा **आयुष्य आरुरोह**=प्राप्त होता है। **वषट्कारः (आरुरोह)**=('ओजश्च सहश्च वषट्कारश्च प्रियतमे तन्वौ' ऐ० ३.८) तुझे ओजस्विता व सहनशक्ति प्राप्त होती है। अब इस स्थिति में वह **रोहितः**=तेजस्वी प्रभु **रेतसा सह**=रेतस् के साथ (शक्ति के साथ) **त्वा**=तुझे **आरुरोह**=आरोहण करता है—प्राप्त होता है।

भावार्थ—यज्ञशील को 'ज्ञान, श्री, प्राणशक्ति, वर्चस, शक्ति-सम्पन्न दीर्घजीवन, ओजस्विता व सहनशीलता' प्राप्त होती है और अब 'शक्ति के साथ प्रभु' इसे प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**विराड्बृहती**॥

सर्वव्यापक प्रभु

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम्।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्व ∫ र्लोकान्व्या ∫ नशे॥ १६॥

१. यह उपासक प्रभु का स्तवन करता हुआ कहता है कि **अयम्**=यह परमेश्वर **पृथिव्या गर्भं वस्ते**=इस पृथिवीलोक के गर्भ को भी आच्छादित करता है। **दिवं वस्ते**=द्युलोक को भी आच्छादित करता है, **अयं अन्तरिक्षम्**=यह अन्तरिक्षलोक का भी आच्छादन करनेवाला है। २. यह प्रभु **ब्रध्नस्य विष्टपि**=सूर्य के प्रदेश में **स्वः लोकान्**=प्रकाशमय व सुखमय लोकों को **व्यानशे**=व्याप्त किये हुए हैं। वस्तुतः प्रभु की व्याप्ति से ही वे प्रकाश व आनन्द से परिपूर्ण

हैं।

भावार्थ—प्रभु पृथिवी के गर्भ में, अन्तरिक्ष में व द्युलोक में सर्वत्र व्याप्त हैं। सूर्य के प्रदेश में प्रकाशमय लोकों को भी व्याप्त किये हुए हैं। अपनी व्याप्ति से वे उन्हें प्रकाशमय व सुखमय बना रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाककुम्मतीजगती**॥

'पृथिवी-योनिः तल्पा' स्योना सुशेवा

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु॥ १७॥

१. हे **वाचस्पते**=वेदवाणी के स्वामिन् प्रभो! आपसे दी गई इस वेदवाणी को हम देखें और उसके अनुसार जीने का प्रयत्न करें। ऐसा करने पर **पृथिवी नः स्योना**=यह पृथिवी हमारे लिए सुखकर हो। **योनिः स्योना**=घर सुख देनेवाला हो। **नः तल्पा सुशेवा**=हमारा यह सोने का मंच भी सुख देनेवाला हो। सब वस्तुओं का ठीक विनियोग करते हुए हम सुखी हों। २. **इह एव**= यहाँ—इस मानव-जीवन में ही **प्राणः**=वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्राणभूत प्रभु **नः सख्ये अस्तु**=हमारी मित्रता में हो—हम प्रभु के सखा बन पाएँ। हे परमेष्ठिन्! परम स्थान में स्थित प्रभो! **तं त्वा**=उस आपको **अग्निः**=यह प्रगतिशील जीव **आयुषा वर्चसा**=आयुष्य और वर्चस् के साथ **परिदधातु**=अपने हृदय में धारण करे अथवा अपने चारों ओर धारण करे, आपसे अपने को सुरक्षित समझे। चारों ओर आपकी सत्ता को अनुभव करता हुआ निर्भय हो।

भावार्थ—प्रभुप्रदत्त वेदज्ञान को अपनाने पर ये पृथिवी, घर व शय्या सब हमारे लिए सुखकर होंगे। प्रभु हमारे मित्र होंगे। हम प्रगतिशील बनकर दीर्घजीवन व शक्ति के साथ प्रभु को अपने हृदयों में धारण करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥
छन्दः—**पञ्चपदापरशाक्वराभुरिक्ककुम्मत्यतिजगती**॥

ऋतवः वैश्वकर्मणाः

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः। इहैव प्राणः
सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु॥ १८॥

१. हे **वाचस्पते**=वेदज्ञान के स्वामिन् प्रभो! ये **पञ्च ऋतवः**=('पञ्चऋतवः हेमन्तशिशिरयोः समासेन'-ऐ०ब्रा०') जो पाँच ऋतुएँ हैं, वे **नौ**=हमारे लिए **वैश्वकर्मणाः**=सब ऋतुओं के अनुकूल कर्मों की साधक हों। ये ऋतुएँ वे हों **ये**=जोकि (नौ) **परिसंम्बभूवुः**=हमारे चारों ओर सम्यक् रूप में होती हैं। ऋतुओं का विपर्यय हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न हो। २. इसप्रकार **इह एव**=इस जीवन में ही **प्राणः**=वह प्राणों-का-प्राण प्रभु (स उ प्राणस्य प्राणः) **नः सख्ये अस्तु**=हमारी मित्रता में हो। हम सदा प्रभु के सखा बन पाएँ। हे **परमेष्ठिन्!**=परम स्थान में स्थित प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **रोहितः**=तेजस्वी होता हुआ यह उपासक **आयुषा वर्चसा**=दीर्घजीवन व वर्चस् के साथ **परिदधातु**=अपने चारों ओर धारण करे। आपको चारों ओर अनुभव करता हुआ अपने को सुरक्षित जानने से निर्भय हो।

भावार्थ—सब ऋतुएँ हमारे अनुकूल हों। हम सब कर्मों को ऋतुओं के अनुसार करनेवाले हों। प्रभु की मित्रता में हम निर्भय हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥
छन्दः—**पञ्चपदापरातिजागताककुम्मत्यतिजगती**॥

सौमनसं गाः प्रजाः

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि॥ १९॥

१. हे **वाचस्पते**=ज्ञान की वाणियों के स्वामिन् प्रभो! आप **नः**=हमारे लिए **सौमनसं मनः**=प्रशस्त प्रसादमय मननवाले मन को **जनय**=उत्पन्न कीजिए **च**=और **गोष्ठे**=हमारी गौशाला में **गाः**=(जनय) गौओं को प्रादुर्भूत कीजिए तथा **योनिषु प्रजाः**=घरों में उत्तम सन्तानों को प्राप्त कराइए। २. **इह एव**=इस जीवन में ही **प्राणः**=वह सबका प्राण प्रभु **नः सख्ये अस्तु**=हमारी मित्रता में हो—हम प्रभु के सखा बन पाएँ। हे **परमेष्ठिन्**=परम स्थान में स्थित प्रभो! **तं त्वा**=उन आपको **अहम्**=मैं **आयुषा वर्चसा**=आयुष्य व वर्चस् के साथ **परिदधामि**=अपने चारों ओर धारण करता हूँ। वस्तुतः आपका धारण ही मुझे आयुष्य व वर्चस् प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभु के वेदज्ञान को अपनाते हुए हम 'मनःप्रसाद, उत्तम गौओं व उत्तम प्रजाओं' को प्राप्त करें, प्रभु की मित्रता में चलें। प्रभु को चारों ओर धारण करते हुए दीर्घजीवी व वर्चस्वी बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सूनृतावत् राष्ट्र

परि त्वा धात्सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत्॥ २०॥

१. वह **सविता देवः**=उत्पादक व प्रेरक (सविता) तथा प्रकाशमय (देव) **त्वा**=तुझे **परिधात्**=सब ओर से धारण करता है। प्रभु की प्रेरणा को सुनता और निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त होता तथा स्वाध्याय द्वारा विकासमय जीवनवाला बनना ही धारण का मार्ग है। इसी से हम कभी भी शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते। **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु तुझे **वर्चसा**=वर्चस्—रोग-निरोधक शक्ति से धारण करें। हममें आगे बढ़ने की भावना होगी तो हम रोगों से आक्रान्त होंगे ही नहीं। **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के भाव **त्वा**=तुझे **अभि**=शरीर व मस्तिष्क दोनों के दृष्टिकोण से रक्षित करें। द्वेष से उत्पन्न होनेवाले विष शरीर व मस्तिष्क पर घातक प्रभाव डालते हैं। २. इसप्रकार 'सविता, देव, अग्नि, मित्र व वरुण' की आराधना करता हुआ तू **सर्वाः अरातिः**=सब शत्रुओं को **अवक्रामन्**=नीचे पादाक्रान्त करता हुआ **एहि**=गति कर। तेरे सब कर्त्तव्य शत्रुओं को कुचल कर किये जाएँ। 'काम, क्रोध, लोभ' से प्रेरित होकर तेरी गति न हो। इसप्रकार **इदं राष्ट्रम्**=इस शरीररूप राष्ट्र को **सूनृतावत् अकरः**=प्रिय, दुःखनाशक सत्य (सू ऊन् ऋत) वाणीवाला कर। तेरे जीवन में सत्य-ही-सत्य हो—असत्य का अंश भी न हो।

भावार्थ—हम 'सविता' के आराधक बनकर निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त हों, 'देव' की आराधना करते हुए प्रकाशमय जीवनवाले बनें। आगे बढ़ने की भावना हमें तेजस्वी बनाए। स्नेह व निर्द्वेषिता हमारे शरीर व मस्तिष्क का धारण करें। 'काम, क्रोध, लोभ' को कुचलकर हम कर्मों में प्रवृत्त हों। हमारा जीवन सत्यमय हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीनिचृद्गायत्री**॥

पृषती प्रष्टिः

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित। शुभा यासि रिणन्नपः॥ २१॥

१. हे **रोहित**=सदावृद्ध, तेजस्विन् प्रभो! **यं त्वा**=जिस आपको **रथे**=इस शरीररूप रथ में **पृषती**=(to weary, vex. pain) प्राकृतिक भोगविलास में कष्ट को अनुभव करनेवाला अतएव **प्रष्टिः**=(bystander) प्राकृतिक भोगों से उपराम हुआ-हुआ (एक ओर होकर खड़ा हुआ) यह साधक **वहति**=धारण करता है तब आप **शुभा यासि**=उसके लिए सब शुभों को प्राप्त कराते हैं और **अपः रिणन्**=उसके रेतःकणों को शरीर में ही प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—प्रकृति चमकती है, जीव का उसकी ओर झुकाव होना स्वाभाविक है, परन्तु जब मनुष्य प्राकृतिक भोगों में विनाश अनुभव करता है तब वह प्रभु की ओर झुकता है। प्रभु उसे सब सुखों को प्राप्त कराते हैं। अब यह साधक शरीरस्थ रेतःकणों की ऊर्ध्वगति के लिए यत्नशील होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रोहितस्य अनुव्रता रोहिणी

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः।
तया वाजान्विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम॥ २२॥

१. 'रोहित' प्रभु हैं, 'रोहिणी' प्रकृति है, प्रभु की पत्नी के रूप में यह प्रकृति है। प्रभु महादेव है तो यह पार्वती है, प्रभु विष्णु है तो यह लक्ष्मी है, प्रभु ब्रह्मा हैं तो यह सरस्वती है। जब 'रोहिणी' सब देवों को जन्म देनेवाली प्रकृति **रोहितस्य**=उस तेजस्वी प्रभु के **अनुव्रता**=अनुकूल व्रतवाली होती है, अर्थात् प्रकृति के सब पदार्थ हमें प्रभु की ओर ले-चलनेवाले होते हैं, उस समय यह **सूरिः**=ज्ञानवाली, **सुर्वणा**=उत्तमता से प्रभु के गुणों का वर्णन करनेवाली, **बृहती**=हमारे हृदयों को विशाल बनानेवाली तथा **सुवर्चाः**=उत्तम वर्चस्वाली होती है। यदि हम प्रकृति के भोगों में न फँसकर प्रकृति के पदार्थों में प्रभु की महिमा को देखते हुए उनका सदुपयोग करें तो यह प्रकृति हमें 'ज्ञानी, प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला, विशाल हृदय व वर्चस्वी' बनाती है। २. **तया**=उस प्रकृति से हम **विश्वरूपां वाजान् जयेम**=अङ्ग-प्रत्यङ्गों को रूपसम्पन्न बनानेवाली शक्तियों का विजय करें। प्रकृति के पदार्थों के ठीक प्रयोग से हमारे सब अङ्ग सशक्त व सुरूप बनते हैं। **तया**=उस प्रभु की अनुव्रता प्रकृति से हम **विश्वाः पृतनाः**=सब शत्रुओं को **अभिष्याम**=अभिभूत करें। प्रकृति का युक्त प्रयोग होने पर यह हमें प्रभु की ओर ले-चलती है। उस समय ये हमें विजयी-ही-विजयी बनाती है।

भावार्थ—हम प्रकृति का इसप्रकार से प्रयोग करें कि यह हमें प्रभु की ओर ले-चलनेवाली हो। उस समय हम 'ज्ञानी, स्तोता, विशाल हृदय व तेजस्वी' बनेंगे। हम इस प्रकृति के द्वारा सब शक्तियों पर विजय करते हुए सब शत्रुओं को जीतनेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रोहिणी रोहितस्य इदं सदः

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।
तां गन्धर्वा कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम्॥ २३॥

१. **रोहिणी**=प्रकृति **रोहितस्य**=उस तेजस्वी प्रभु का **इदं सदः**=यह घर है—निवास स्थान

है। प्रभु प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान हैं। **असौ पन्थाः**=मार्ग वह है **पृषती येन याति**=यह (पृष् to give) सब पदार्थों को देनेवाली प्रकृति जिससे जाती है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ पिण्ड एकदम नियमित गति से चल रहा है। जीव को भी चाहिए की वह सूर्य और चन्द्र की भाँति नियमित गति से चले। 'स्वस्तिपन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव'। २. **ताम्**=उस प्रकृति को **गन्धर्वाः**=ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाले **कश्यपाः**=तत्त्वद्रष्टा लोग **उन्नयन्ति**=उन्नत करते हैं—अपने जीवन में उत्कर्षेण प्राप्त करते हैं—प्रकृति का ठीक प्रयोग करते हुए वे उसे उचित आदर देते हैं। **ताम्**=उस प्रकृति को **कवयः**=ज्ञानी लोग **अप्रमादम्**=प्रमादशून्य होकर **रक्षन्ति**=रक्षित करते हैं। प्रकृति के बने हुए इस शरीर के रक्षण को भी वे धर्म समझते हैं और इस शरीर की बड़ी सावधानी से रक्षा करते हैं

भावार्थ—प्रकृति में सर्वत्र प्रभु का वास है। प्रकृति के बने सूर्यादि सब पिण्डों को प्रभु ही प्रकाश प्राप्त कराते हैं। इन सूर्य-चन्द्रादि की भाँति नियमित मार्ग का ये अनुसरण करते हैं। प्रकृति के ठीक प्रयोग से वे उसका आदर करते हैं और शरीर-रथ का पूर्णरूपेण रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सूर्यस्य अश्वाः

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश॥ २४॥

१. **सूर्यस्य**=सूर्य के **अश्वाः**=किरणरूप अश्व **हरयः**=हमारे सब रोगों का हरण करनेवाले हैं। **केतुमन्तः**=प्रकाशवाले ये किरणरूप अश्व **अमृताः (न मृतं येभ्यः)**=हमें मृत्यु व रोगों से बचाते हैं और इसप्रकार **रथम्**=शरीर-रथ को **सुखं वहन्ति**=(ख=इन्द्रियाँ) उत्तम इन्द्रियोंवाला बनाकर वहन करते हैं। 'उद्यन्नादित्यः कृमीन् हन्ति निम्लोचन हन्तु रश्मिभिः'। २. **घृतपावा**=इन सूर्यादि पिण्डों में दीप्ति का रक्षण करनेवाला **रोहितः**=वह तेजस्वी **भ्राजमानः**=दीप्त होता हुआ **देवः**=प्रकाशमय प्रभु **दिवम्**=इस प्रकाशमय द्युलोक—द्युलोकस्थ सूर्य तथा **पृषतीम्**=इस 'लोहित शुक्ल, कृष्ण' (रज, सत्त्व, तमवाली) चित्रित प्रकृति में **आविवेश**=प्रविष्ट हो रहा है। वस्तुतः प्रभु से ही इन प्राकृतिक पिण्डों को वह-वह 'विभूति, श्री व ऊर्ज्' प्राप्त हो रहे हैं।

भावार्थ—सूर्य की किरणें हमारे शरीर-रथ को नीरोग बनानेवाली हैं। सूर्य में इस दीप्ति को प्रभु ही स्थापित करते हैं। प्रभु प्रत्येक प्राकृतिक पिण्ड में प्रविष्ट हुए-हुए उस-उस श्री को वहाँ प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रोहितः वृषभः तिग्मशृङ्गः

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद्देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते॥ २५॥

१. **यः**=जो प्रभु **रोहितः**=सदा प्रवृद्ध व तेजस्वी हैं **वृषभः**=सुखों का सेचन करनेवाले व **तिग्मशृङ्गः**=बड़े तीक्ष्ण ज्ञानकिरणरूप शृङ्गोंवाले हैं, वे प्रभु ही **अग्निं परिबभूव**=अग्नि को समन्तात् व्याप्त कर रहे हैं और **सूर्यम् परि (बभूव)**=सूर्य को व्याप्त कर रहे हैं। वस्तुतः प्रभु ही अग्नि में तेज के रूप से रह रहे हैं और सूर्य में वे ही 'प्रभा' के रूप में हैं। 'तेजश्चास्मि विभावसौ प्रभास्मि शशिसूर्ययोः'। **यः**=जो प्रभु **दिवं पृथिवीं च**=द्युलोक व पृथिवीलोक को **विष्टभ्नाति**=थामते हैं, **तस्मात्**=उस प्रभु से ही—प्रभु की शक्ति से ही और प्रभु के अधिष्ठातृत्व

में ही (अधि) **देवाः**=सब देव **सृष्टीः अधि सृजन्ते**=सृष्टियों को जन्म देते हैं। 'मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्' यह चराचर जगत् प्रभु की अध्यक्षता में ही प्रकृति से उत्पन्न होता है।

भावार्थ—वे प्रभु तेजस्वी हैं, सुखों का वर्षण करनेवाले व तीव्र किरणरूप शृङ्गोंवाले हैं। अग्नि व सूर्यादि में प्रभु ही व्याप्त हो रहे हैं। वे प्रभु ही द्युलोक व पृथिवीलोक का धारण करते हैं। सब देव प्रभु की अध्यक्षता में ही सृष्टियों को रचते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**विराट्परोष्णिक्**॥

दिवम् आरुहत्

रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात्। सर्वा रुरोह रोहितो रुहः॥ २६॥

१. वह **रोहितः**=तेजस्वी प्रभु **महतः परि अर्णवात्**=(अर्णवः agitated) महान् क्षुब्ध (तीव्र गतिमय) प्रकृति के अणुसमुद्र से **दिवं परि आरुहत्**=(परि वर्जने) ऊपर उठकर अपने प्रकाशमय स्वरूप में स्थित हैं। सम्पूर्ण प्रकृति के अणुसमुद्र को वे ही गति दे रहे हैं, परन्तु स्वयं शान्त हैं 'तदेजति तन्नैजति', 'भूतभृन्न च भूतस्थः'। २. वह **रोहितः**=तेजस्वी प्रभु **सर्वाः रुहः रुरोह**=संसार-वृक्ष की सब शाखाओं को जन्म देनेवाले हैं और इन सबमें व्याप्त हो रहे हैं। (सबका आरोहण करते हैं)।

भावार्थ—यह रोहित प्रभु इस प्रकृति के अणुसमुद्र को गति देकर संसार का निर्माण करते हैं, परन्तु इसमें उलझते नहीं। वे प्रभु ही संसार-वृक्ष की सब शाखाओं को प्रादुर्भूत करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पयस्वती घृताची 'धेनुः'

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व॥ २७॥

१. वेदरूपी धेनु ज्ञानदुग्ध द्वारा हमारा पोषण करती है। इस **पयस्वतीम्**=ज्ञानदुग्ध देनेवाली—दुग्ध द्वारा हमारा पोषण करनेवाली तथा **घृताचीम्**=(घृ दीप्तौ क्षरणे) मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति द्वारा हमारे जीवनों को अलंकृत करनेवाली वेदधेनु को **विमिमीष्व**=विशिष्टरूप से निर्मित कर—उसका उच्चारण कर (मा=to roar, sound)। **एषा**=यह **देवानां धेनुः**=देवों—देववृत्ति के पुरुषों की गाय है। **अनपस्पृक्**=यह पृथक् करने योग्य नहीं—सदा स्पर्श के योग्य है। वेद का स्वाध्याय तो नित्य करना ही है। २. एक **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष को चाहिए कि वह **सोमं पिबतु**=सोमशक्ति का शरीर में पान करे। सुरक्षित सोम ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है, तभी वेदधेनु के दुग्धपान की रुचि उत्पन्न होती है। इसप्रकार हमारा **क्षेमः अस्तु**=कल्याण-ही-कल्याण हो। **अग्निः प्रस्तौतु**=यह प्रगतिशील जीव प्रभु का स्तवन करे और **मृधः विनुदस्व**=संहार कर देनेवाले इन काम, क्रोध, लोभरूप शत्रुओं को दूर धकेल दे। प्रभु-स्तवन कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराएगा, इसप्रकार सोम का रक्षण सम्भव होगा और ज्ञानाग्नि की दीप्ति होकर वेदधेनु के ज्ञानदुग्ध के पान की क्षमता बढ़ेगी।

भावार्थ—वेदधेनु का ज्ञानदुग्ध हमारा आप्यायन करता है, यह मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करानेवाली है। जितेन्द्रिय पुरुष सोम का रक्षण करता हुआ ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। प्रभु-स्तवन करता हुआ यह काम, क्रोधादि शत्रुओं को अपने से दूर रखता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

'अभीषाड् विश्वाषाड्' अग्निः

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान्हन्तु ये मम॥ २८॥

१. **अग्निः सम् इद्धः**=गतमन्त्र के अनुसार वेद के स्वाध्याय से वह अग्रणी प्रभु हमारे हृदयों में समिद्ध हुए हैं। **सम् इधानः**=सम्यक् दीप्त होते हुए ये प्रभु **घृतवृद्धः**=दोषों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति द्वारा हमारे अन्दर बढ़ते हैं, **घृताहुतः**=वस्तुतः प्रभु ही ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करानेवाले हैं (घृतं आहुतं येन)। २. ये प्रभु ही ज्ञान देकर **अभीषाट्**=हमारे शत्रुओं का सर्वत्र पराभव करनेवाले हैं। **विश्वाषाट्**=हमारे अन्दर प्रविष्ट हो जानेवाले कामादि शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं। इसप्रकार **अग्निः**=ये अग्रणी प्रभु ही **ये मम**=जो मेरे शत्रु हैं उन सब **सपत्नान् हन्तु**=शत्रुओं का विनाश करें।

भावार्थ—स्वाध्याय के द्वारा हम प्रभु के प्रकाश को हृदयों में देखने का प्रयत्न करें। दीप्त होते हुए प्रभु हमारे ज्ञान को और बढ़ाते हैं और प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं, हमें कामादि पर विजय प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ज्ञानाग्नि Vs. क्रव्यादग्नि

हन्त्वेनान्प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति। क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान्प्र दहामसि॥ २९॥

१. वह प्रभु **एनान्**=इन हमारे शत्रुओं का विनाश करें **यः अरिः**=जो भी शत्रु **नः पृतन्यति**=हमपर आसुरभावों की सेना से आक्रमण करता है, अग्रणी प्रभु उनको **प्रदहतु**=जला दे। हमारे अन्दर प्रविष्ट हो जानेवाले शत्रुओं को हम ज्ञानाग्नि द्वारा भस्म करनेवाले हों। २. **वयम्**=हम **क्रव्यात् अग्निना**=कच्चा मांस खा जानेवाले कामाग्नि द्वारा **सपत्नान् प्रदहामसि**=शत्रुओं को ही जलानेवाले हों। कामाग्नि हमारे शत्रुओं को भस्म करे। हम ज्ञानाग्नि द्वारा इन कामादि शत्रुओं का विनाश करनेवाले बनें।

भावार्थ—कामाग्नि हमारे शत्रुओं को भस्म करे। हम ज्ञानाग्नि द्वारा इन कामादि शत्रुओं को भस्म करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्नेः तेजोभिः

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान्।
अधा सपत्नान्मामकानग्नेस्तेजोऽभिरादिषि॥ ३०॥

१. हे **इन्द्र**=इन्द्रियों को वश में करनेवाले **बाहुमान्**=प्रशस्त भुजाओंवाले, अर्थात् शक्तिशाली साधक! तू **वज्रेण**=क्रियाशीलतारूप व्रज से **अवाचीनान्**=निम्न गतिवाले—नीचे की ओर ले-जानेवाले इन काम, क्रोधादि शत्रुओं को **अवजहि**=सुदूर विनष्ट कर। जितेन्द्रियता व क्रियाशीलता हमें शत्रुओं को वश में करने योग्य बनाती है। २. **अध**=अब मैं **मामकान् सपत्नान्**=अपने शत्रुओं को **अग्नेः तेजोभिः**=उस अग्रणी प्रभु के तेजों से **आ आदिषि**=निगृहीत कर लेता हूँ। प्रभु की उपासना में उपासक प्रभु के तेज से तेजस्वी बनता है और काम, क्रोधादि शत्रुओं को निगृहीत करने में समर्थ होता है।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय व क्रियाशील बनकर शत्रुओं का पराभव करें। प्रभु के तेज से

तेजस्वी होकर हम शत्रुओं का निग्रह करने में समर्थ हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाककुम्मतीशाक्वरगर्भाजगती**॥

बृहस्पति, इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ

अग्ने॒ स॒पत्ना॒नध॑रान्पादया॒स्मद् व्य॑थया॑ सजा॒तमुत्पि॑पा॑नं बृहस्पते।
इन्द्रा॑ग्नी॒ मित्रा॑वरुणा॒वध॑रे पद्यन्ता॒मप्र॑तिमन्यूयमानाः॥ ३१॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **सपत्नान् अधरान् पादय**=शत्रुओं को नीचे गतिवाला कीजिए, उन्हें पादाक्रान्त कर दीजिए। **सजातम्**=साथ ही उत्पन्न होनेवाले **उत्पिपानम्**=(पि गतौ, उत्पेपीयमानं कुटिलमुद्गच्छन्तम्)=कुटिल गतिवाले इस कामरूप शत्रु को हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! **अस्मत्**=हमसे **व्यथया**=पीड़ित करके दूर कर दीजिए। २. हे **इन्द्राग्नी**=जितेन्द्रियता व अग्रगति की भावनाओ! **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! ये शत्रु **अप्रतिमन्यूयमानाः**=हमारे प्रति क्रोध न कर सकने योग्य होते हुए—निष्फल क्रोधवाले होते हुए **अधरे पद्यन्ताम्**=नीचे गतिवाले हों—पराजित हो जाएँ।

भावार्थ—हममें आगे बढ़ने की भावना हो (अग्नि) ज्ञान-प्राप्ति की रुचि हो (बृहस्पति), हम जितेन्द्रिय बनें और आगे बढ़ें (इन्द्र+अग्नि) तथा स्नेह व निर्द्वेषतावाले हों (मित्र+वरुण)। यही मार्ग है जिससे हम शत्रुओं का पराभव कर सकेंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सूर्य की किरणों में नीरोगता

उ॒द्यंस्त्वं दे॑व सूर्य स॒पत्ना॒नव॑ मे जहि।
अवै॑ना॒नश्म॑ना जहि॒ ते य॑न्त्वध॒मं तमः॥ ३२॥

१. काम-क्रोधादि शत्रुओं की भाँति रोग भी हमारे शत्रु हैं। उदय होता हुआ सूर्य रोगकृमियों को नष्ट करके इन रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करता है। 'उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्लोचन् हन्तु रश्मिभिः।' इसलिए कहते हैं कि हे **देव सूर्य**=हमारे रोगों को जीतने की कामनावाले सूर्य! **उद्यन् त्वम्**=उदय होता हुआ तू **मे सपत्नान् अवजहि**=मेरे इन रोगरूप शत्रुओं को विनष्ट कर। २. हे साधक! तू **एनान्**=शत्रुओं को **अश्मना (अश्मा भवतु नस्तनूः)**=पाषाण-तुल्य दृढ़ शरीर से **अवजहि**=सुदूर भगा दे। तू शरीर को दृढ़ बना। यह रोगों का शिकार हो ही न पाये। **ते**=वे रोगरूप सब शत्रु **अधमं तमः यन्तु**=गहन अन्धकार को प्राप्त हों—इनकी स्थिति पाताललोक में हो। ये हम तक न पहुँच पाएँ।

भावार्थ—सूर्यकिरणों के सम्पर्क में जीवन बीताते हुए हम नीरोग शरीरवाले बनें। हमारे दृढ़ शरीर में रोगों का प्रवेश हो ही न सके।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

घृतेन ब्रह्मणा

व॒त्सो वि॒राजो॑ वृष॒भो म॑ती॒नामा रु॑रोह शु॒क्रपृ॑ष्ठोऽन्तरि॑क्षम्।
घृते॒नार्क॒मभ्य॒ र्चन्ति वत्सं ब्रह्म॒ सन्तं॒ ब्रह्म॑णा वर्धयन्ति॥ ३३॥

१. **विराजः वत्सः**=(वत्सः वसतीति) विराट् में अधिष्ठातृरूपेण निवास करनेवाला (ततो विराडजायत, विराजोऽधि पुरुषः), **मतीनां वृषभः**=बुद्धियों का, ज्ञानों का वर्धन करनेवाला **शुक्रपृष्ठः**=देदीप्यमान् पृष्ठवाला, अर्थात् अत्यन्त तेजस्वी प्रभु **अन्तरिक्षं आरुरोह**=हमारे हृदय अन्तरिक्ष में आरोहण करता है। हम हृदय में विराट् पिण्ड द्वारा सृष्टि के निर्माता प्रभु का स्मरण

करते हैं। प्रभु ही हमें बुद्धियों को प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु तेजोदीप्त (आदित्यवर्ण) हैं। २. इस **अर्कम्**=अर्चनीय, **वत्सम्**=सर्वत्र निवासवाले व वेदज्ञान का उपदेश करनेवाले प्रभु को उपासक **घृतेन**=मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति के द्वारा **अभ्यर्चन्ति**=पूजते हैं। **ब्रह्म सन्तम्**=उपासक ज्ञानस्वरूप होते हुए प्रभु को **ब्रह्मणा वर्धयन्ति**=ज्ञान के द्वारा अपने अन्दर बढ़ाते हैं।

भावार्थ—हम विराट् पिण्ड में निवास करनेवाले, बुद्धियों के वर्धक, तेजःपुञ्ज प्रभु का हृदयों में ध्यान करें। हम प्रभु को मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति द्वारा पूजें। ब्रह्म का पूजन ब्रह्म (ज्ञान) द्वारा ही हो सकता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु-प्राप्ति का मार्ग

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व॥ ३४॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु की उपासना करता हुआ तू **दिवं च रोह**=मस्तिष्करूप द्युलोक का आरोहण कर—मस्तिष्क को उत्तम बना। **पृथिवीं च रोह**=शरीररूप पृथिवीलोक का भी तू विकास कर। **राष्ट्रं च रोह**=अपने गृहरूप राष्ट्र को भी उन्नत कर। **द्रविणं च रोह**=अपने धन को भी बढ़ानेवाला बन। २. **प्रजां च रोह**=सन्तानों को उत्तम बना। **अमृतं च रोह**=नीरोगता का प्रादुर्भाव कर। इसप्रकार करता हुआ तू **तन्वम्**=अपने शरीर को **रोहितेन संस्पृशस्व**=उस तेजस्वी प्रभु से मेलवाला कर।

भावार्थ—वस्तुतः प्रभु-प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम दीप्तमस्तिष्क व तेजस्वी शरीरवाले बनें। गृहरूप राष्ट्र को उन्नत करें, आवश्यक धन का सम्पादन करें, उत्तम सन्तानों को प्राप्त करें, उन्हें नीरोग बनाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

रोहितः देवाः

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः॥ ३५॥

१. ये **देवाः**=जो देववृत्ति के पुरुष **राष्ट्रभृतः**=राष्ट्र का धारण करनेवाले हैं, वे **अभितः सूर्यं यन्ति**=शीघ्रता से (अभितः=quickly) सूर्यसम् ज्योतिवाले ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। ब्रह्म की उपासनावाले ये देव ही वस्तुतः राष्ट्र का भरण कर पाते हैं। ब्रह्म की उपासना उन्हें शक्ति व पवित्रता प्राप्त कराती है। २. **तैः**=उन विद्वानों से **संविदानः**=ऐकमत्यवाला तथा **सुमनस्यमनः**=प्रीतिवाला होता हुआ **रोहितः**=तेजोदीप्त, सदावृद्ध प्रभु **ते राष्ट्रं दधातु**=तेरे राष्ट्र को धारण करें। प्रभु इन देवों के द्वारा राष्ट्र का धारण करते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र का धारण वे देववृत्ति के व्यक्ति ही कर पाते हैं जो प्रभु के सम्पर्क में शक्ति व पवित्रता का सम्पादन करते हैं। इनके प्रति प्रीतिवाले प्रभु इन्हें राष्ट्रधारण-शक्ति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**निचृन्महाबृहती**॥

'ब्रह्मपूताः यज्ञाः', 'अध्वगतः हरयः'

उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम्॥ ३६॥

१. गतमन्त्र में संकेतित देव बनने के लिए हमें क्या करना है? इसका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि **त्वा**=तुझे **ब्रह्मपूताः यज्ञाः उद्वहन्ति**=वेदमन्त्रों से पवित्र हुए-हुए यज्ञ विषयवासनाओं से ऊपर उठाते हैं। **अध्वगतः हरयः**=मार्ग पर चलनेवाले घोड़े—ये इन्द्रियाश्व **त्वा वहन्ति**=तुझे प्रभु के समीप प्राप्त कराते हैं। यदि हमारे इन्द्रियाश्व विषयपंक में मग्न न होकर मार्ग पर आगे बढ़ेंगे, तो हम प्रभु को प्राप्त करेंगे ही। २. इसप्रकार यज्ञनशील बनकर इन्द्रियाश्व द्वारा मार्ग पर आगे बढ़ता हुआ व्यक्ति प्रभु को प्राप्त करता है। इस व्यक्ति के लिए कहते हैं कि तू **समुद्रं अर्णवम्**=इस गतिशील अणुसमुद्र से बने ब्रह्माण्ड से **तिरः अतिरोचसे**=पार होकर अतिशयेन देदीप्यमान होता है। (ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः)। यज्ञ करना और मार्ग पर आगे बढ़ना ही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

भावार्थ—हम वेदमन्त्रों के साथ यज्ञ करें तथा इन्द्रियाश्वों को मार्ग से भटकने से बचाएँ। यही संसार से पार होने का मार्ग है। इसी मार्ग से प्रभु को प्राप्त होकर हम दीप्त जीवनवाले बन पाएँगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**परशाक्वराविराडतिजगती**॥

वसुजिति गोजिति सन्धनाजिति

रोहिते द्यावापृथिवी अधिश्रिते वसुजिति गोजिति सन्धनाजिति।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि॥ ३७॥

१. **रोहिते**=अतिशयेन तेजस्वी व सदावृद्ध प्रभु में ही **द्यावापृथिवी**=ये द्युलोक व पृथिवीलोक **अधिश्रिते**=आश्रित हैं। द्यावापृथिवी के अन्तर्गत सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को वे प्रभु ही धारण कर रहे हैं, जो **वसुजिति**=वसुओं को जीतनेवाले हैं—हमारे लिए सब वसुओं (निवास के लिए आवश्यक पदार्थों) को प्राप्त करानेवाले हैं। **गोजिति**=हमारे लिए गौओं का विजय करानेवाले हैं—गौओं को प्राप्त करानेवाले हैं। अथवा (**गावः**=इन्द्रियाणि) हमारे लिए इन्द्रियों का विजय करनेवाले हैं—प्रभु-स्मरण ही हमें इन्द्रियों के विजय के योग्य बनाता है। **सन्धनाजिति**=वे प्रभु ही धनों का सम्यक् विजय करनेवाले हैं। प्रभु वे हैं **यस्य**=जिनके **सहस्रं जनिमानि**=हज़ारों प्रादुर्भाव हैं—वे प्रभु हज़ारों लोकों का निर्माण करते हैं **च**=और उन लोकों में **सप्त**='कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सात ऋषियों को जन्म देते हैं, जिनके द्वारा हमारा यह सप्तहोता यज्ञ चलता है, 'येन यज्ञस्तायते सप्तहोता'। हे प्रभो! मैं **मज्मनि**=बल के निमित्त—बल प्राप्त करने के लिए **ते**=आपके द्वारा उपदिष्ट **भुवनस्य नाभिम्**=इस भुवन के केन्द्रभूत यज्ञ को 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' **अधिवोचेयम्**=आधिक्येन कहूँ—जीवन से यज्ञों का ही प्रतिपादन करूँ—यज्ञनशील बनूँ।

भावार्थ—प्रभु ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार हैं। प्रभु ही वसुओं, गौओं व धनों का विजय करनेवाले हैं। सब लोकों को प्रभु उत्पन्न करते हैं और जीवन-यज्ञों को सम्यक् पूर्ण करने के लिए 'दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख' को प्राप्त कराते हैं। हम बल प्राप्त करने के लिए सप्तहोतृक यज्ञों का विस्तार करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यशाः

यशाः यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम्।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः॥ ३८॥

१. हे प्रभो! **यशाः**=(यशः अस्ति अनेन) उपासक के जीवन को यशस्वी बनानेवाले आप

दिशः प्रदिशः च यासि=सब दिशाओं व प्रदिशाओं में व्याप्त हैं। आप ही **पशूनाम् यशाः**=उस-उस पशु में उस-उस यश को स्थापित करनेवाले हैं। मक्खियों को फूलों से रस लेकर शहद के निर्माण की शक्ति आप ही प्राप्त कराते हैं। चील को निष्कम्प पक्षों से आकाश में गति की शक्ति आप ही देते हैं। सिंह को नदी को कुशलता से तैरने की शक्ति आप ही देते हैं **उत**= और **चर्षणीनाम्**=मनुष्यों के यश भी आप ही है। बुद्धिमानों की बुद्धि आप हैं तो तेजस्वियों के तेज आप ही हैं। बलवानों का कामरागविवर्जित बल भी आप ही हैं। २. हे प्रभो! आपकी कृपा से **पृथिव्याः**=इस पृथिवी माता की तथा **अदित्याः**=अखण्डित वेदवाणी की **उपस्थे**=गोद में **अहम्**=मैं **यशाः**=यशस्वी जीवनवाला **भूयासम्**=होऊँ। मैं **सविता इव चारुः**=सूर्य की भाँति दीप्त, सुन्दर जीवनवाला बनूँ। पृथिवीमाता की गोद में रहता हुआ, स्वाभाविक जीवन बिताता हुआ मैं स्वस्थ बनूँ तथा वेदवाणी की गोद में मैं ज्ञानदीप्त बनूँ। इसप्रकार सूर्य के समान चमकनेवाला होऊँ।

भावार्थ—दिशाओं में, पशुओं व मनुष्यों में, सर्वत्र प्रभु के ही यश का विस्तार है। हम पृथिवीमाता की गोद में वेदवाणी को अपनाते हुए स्वस्थ, ज्ञानदीप्त बनकर यशस्वी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोचन सूर्य विपश्चित्

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम्॥ ३९॥

१. हे प्रभो! आप **अमुत्र सन्**=उस सुदूर स्थान में होते हुए **इह वेत्थ**=यहाँ सब-कुछ जानते हो और **इतःसन्**=इधर होते हुए **तानि पश्यसि**=उन सुदूर की वस्तुओं को भी देखते हो। २. इसप्रकार प्रभु के उपासक **इतः**=इधर हृदयदेश में उस प्रभु को **पश्यन्ति**=देखते हैं, जो प्रभु **रोचनम्**=दीप्त हैं, **दिवि सूर्यम्**=अपने प्रकाशमय स्वरूप में निरन्तर गतिवाले हैं। **विपश्चितम्**=ज्ञानी हैं। २. प्रभु का हृदय में ध्यान करते हुए हम भी ओजस्वी बनें (रोचनम्), ज्ञानपूर्वक क्रियाओं को करनेवाले हों (दिवि सूर्यम्) अधिक-से-अधिक ज्ञान को प्राप्त करें (विपश्चितम्)।

भावार्थ—प्रभु पृथिवीलोक में स्थित होते हुए द्युलोक को सम्यक् देखते हैं, द्युलोक में होते हुए पृथिवी को सम्यक् देखते हैं। इन प्रभु को उपासक हृदय में 'रोचन, सूर्य, विपश्चित्' रूप में देखता है। ऐसा ही बनने का प्रयत्न करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु का दर्शन

देवो देवान्मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे। समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे॥ ४०॥

१. हे प्रभो! **देवः**=आप प्रकाशमय व सम्पूर्ण गति के स्रोत हैं **देवान् मर्चयसि**=सूर्यादि सब देवों को आप ही (मर्च् to move) गति देते हैं। आप ही **अर्णवे**=गतिमय अणुसमुद्र के **अन्तः चरसि**=अन्दर विचरण करते हैं—एक-एक कण में आप व्याप्त हैं। २. **तम्**=उस **समानम्**=(सम्यक् आनयति) सबको समानरूप से प्राणित करनेवाले **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को **कवयः**=क्रान्तदर्शी विद्वान् **इन्धते**=अपने हृदयों में समिद्ध करते हैं। उस प्रभु को **परे**=प्राकृतिक भोगों से दूर रहनेवाले ज्ञानी ही **विदुः**=जानते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सूर्यादि सब पिण्डों को गति देते हैं। अणुसमुद्र में भी प्रभु व्याप्त हैं। उस प्रभु को ज्ञानी अपने हृदयों में समिद्ध करते हैं। प्रभु का ज्ञान उन्हीं को होता है जो प्राकृतिक भोगों से ऊपर उठते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रकृतिविद्या+आत्मविद्या

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व ∫ स्वित्सूते नहि यूथे अस्मिन्॥ ४१॥

१. अपराविद्या 'अवः' है, तो पराविद्या 'परः' है। **अवः परेण**=अपराविद्या को पराविद्या के साथ तथा **परः**=पराविद्या को **एना अवरेण**=इस अपराविद्या के साथ **पदा**=अपने पदों से—शब्दों से **बिभ्रती**=धारण करती हुई **गौः**=यह वेदवाणी **वत्सम्**=(वदति) उच्चारण करनेवाले इस जीवरूप वत्स को **उत् अस्थात्**=उन्नत करती है (उत्थापयति)। अकेली प्रकृतिविद्या अन्धकार में ले-जाती है, तो अकेली आत्मविद्या घोर अन्धकार में प्राप्त कराती है। यह वेदवाणी दोनों का मेल करती हुई प्रकृतिविद्या से हमें मृत्यु से तैराती है तथा आत्मविद्या से अमृतत्व को प्राप्त कराती है। प्रकृतिविद्या से अभ्युदय को सिद्ध करती है तो आत्मविद्या से निःश्रेयस को। २. इसप्रकार **सा**=वह वेदवाणी **कद्रीची**=(कौ अञ्चति) पृथिवी पर गति करती हुई **कंस्वित्**=कितने महान् **अर्धम्**=सर्वोच्च स्थान को **परागात्**=सुदूर प्राप्त करती है। अपने बाह्य अर्थों से यह प्रकृति का ज्ञान देती हुई अन्तर अर्थों से प्रभु का साक्षात्कार कराती है। इसप्रकार प्रभु-दर्शन कराती हुई यह वेदवाणी **क्वस्वित् सूते**=भला जन्म कहाँ देती है? यह मुक्ति की स्थिति को प्राप्त कराके जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठा देती है। मुक्ति न भी प्राप्त हो तो भी **नहि यूथे अस्मिन्**=सामान्य लोकसमूह में तो जन्म देती ही नहीं, '**शुचीनां श्रीमतां गेहे**', '**अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्**'=पवित्र श्रीमानों व योगियों के कुल में यह हमें जन्म प्राप्त कराती है, 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्' वहाँ उत्तम बुद्धिसंयोग को प्राप्त करके हम मुक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी अपरा व पराविद्या का समन्वय करके हमें मृत्यु से ऊपर उठाकर अमृतत्व प्राप्त कराती है। यह प्रकृतिविद्या द्वारा अभ्युदय में गति कराती हुई आत्मविद्या से मोक्ष में पहुँचाती है। यह हमें जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठाती है अथवा योगियों के प्रशस्त कुल में ही जन्म देती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

एकपदी-नवपदी

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति॥ ४२॥

१. यह वेदवाणी **एकपदी**=(पद गतौ, गतिः ज्ञानम्) उस अद्वितीय प्रभु का ज्ञान देती है। **द्विपदी**=जीव-परमात्मा का 'द्वा सुपर्णा' आदि मन्त्रों में चित्रण करती है। **सा चतुष्पदी**=यह वाणी 'सोऽयमात्मा चतुष्पाद', इन उपनिषद् शब्दों के अनुसार आत्मा के चार पदों का वर्णन करती है। **अष्टापदी**='भूमि, आपः, अनल, वायु, खं, मनः, बुद्धि व अहंकार' रूप प्रभु की आठ मूर्त्तियों का प्रतिपादन करती है तथा **नवपदी बभूवुषी**=शरीरस्थ आत्मा के इन्द्रियरूप नवद्वारों (अष्टाचक्रा नवद्वारा०) का वर्णन करनेवाली होती हुई यह वाणी **सहस्राक्षरा**=हज़ारों प्रकार से

प्रभु के रूप का व्यापन कर रही है (अश् व्याप्तौ)। २. प्रभु का प्रतिपादन करती हुई यह वाणी **भुवनस्य पङ्क्तिः**=इस ब्रह्माण्ड का विस्तार करनेवाली है (पच् विस्तारे)। सम्पूर्ण भुवन का विस्तृत प्रतिपादन करती है। **तस्याः**=उस वेदवाणी से ही **समुद्राः**=सब विज्ञानों के समुद्र **अधिविक्षरन्ति**=प्रवाहित होते हैं। सब सत्यविद्याओं का आदिस्रोत यही तो है।

भावार्थ—यह वेदवाणी आत्मा व परमात्मा का विविध रूपों में वर्णन करती हुई भुवन की विद्याओं का भी विस्तृत वर्णन करती है। यह सब सत्यविद्याओं का आदिस्रोत है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**विराण्महाबृहती**॥

प्रकाशमय नीरोग जीवन

आरोहन्द्यामृतः प्राव मे वचः।
उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति॥ ४३॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **द्याम् आरोहन्**=मस्तिष्करूप द्युलोक में आरोहन करता हुआ **अ-मृतः**=नीरोग बनता हुआ तू **मे वचः प्राव**=मुझसे दी गई वेदवाणी का प्रकर्षेण रक्षण कर। यह वेदवाणी ही वस्तुतः प्रकाशमय व नीरोग जीवनवाला बनाएगी। २. **त्वा**=तुझे **ब्रह्मपूताः**=वेदवाणी के उच्चारण से पवित्र किये गये **यज्ञाः**=यज्ञ **उद् वहन्ति**=उत्कृष्ट स्थिति में प्राप्त कराते हैं। **अध्वगतः हरयः**=मार्ग पर चलनेवाले ये इन्द्रियाश्व **त्वा वहन्ति**=तुझे लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले होते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी का नियम से स्वाध्याय करते हुए हम प्रकाश व नीरोगता को प्राप्त करें—दीप्त मस्तिष्कवाले व नीरोग शरीरवाले बनें। मन्त्रों द्वारा हम यज्ञों को करनेवाले हों तथा हमारे इन्द्रियाश्व सदा मार्ग पर आगे बढ़ते हुए हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

स्वाध्याय व ध्यान

वेद तत्ते अमर्त्य यत्त आक्रमणं दिवि। यत्ते सधस्थं परमे व्यो ∫ मन्॥ ४४॥

१. हे **अमर्त्य**=अमरणधर्मा, अविनाशी प्रभो! **यत् ते**=जो आपका **दिवि आक्रमणम्**=प्रकाशमय लोकों में आक्रमण है, **ते तत् वेद**=आपके उस रूप को मैं जानता हूँ, 'आप प्रकाशस्वरूप हैं', ऐसा मैं समझता हूँ। २. **यत्**=जो **ते**=आपका **परमे व्योमन्**=इस सर्वोत्कृष्ट हृदयाकाश में **सधस्थम्**=मिलकर ठहरना—आत्मा के साथ स्थित होना है, उसे मैं जानता हूँ। जीव को दो बातें समझनी हैं—१. यह कि प्रभु प्रकाशरूप हैं, प्रभु की प्राप्ति के लिए ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। २. प्रभु का दर्शन हृदयदेश में होगा, जब भी चित्तवृत्ति का निरोध करके हम अन्तर्मुखी वृत्तिवाले बनेंगे तभी हृदय में प्रभु के साथ अपने को स्थित पाएँगे।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि स्वाध्याय द्वारा हम ज्ञान को बढ़ाएँ तथा चित्तवृत्ति के निरोध का अभ्यास करते हुए अन्तर्मुख वृत्तिवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सूर्य' ब्रह्म

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम्॥ ४५॥

१. **सूर्यः**=वह सूर्यसम दीप्त-ज्योतिवाला ब्रह्म **द्याम्**=द्युलोक को **अति पश्यति**=अन्तःप्रविष्ट

होकर देख रहा है। **सूर्यः**=यह सूर्य प्रभु ही **पृथिवीम्**=पृथिवी में प्रविष्ट होकर देख रहा है। **सूर्यः**=यह सूर्य नामक ब्रह्म **आपः**=(आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः) सब प्रजाओं में प्रविष्ट होकर उनके प्रत्येक विचार व आचार को देख रहा है। द्युलोक, पृथिवीलोक व तत्रस्थ सब मनुष्यों को वे प्रभु अन्तःप्रविष्ट होकर देख रहे हैं। २. **सूर्यः**=वे सूर्यसम दीप्तिवाले प्रभु **भूतस्य**=प्राणिमात्र के **एकं चक्षुः**=अद्वितीय चक्षु हैं—प्रभु ही सबके मार्गदर्शक हैं। ये प्रभु **दिवं महीं आरुरोह**=द्युलोक व पृथिवलोक में आरोहण किये हुए हैं—अधिष्ठातृरूपेण वहाँ वर्तमान हैं। प्रभु के अधिष्ठातृत्व में ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गति कर रहा है।

भावार्थ—द्युलोक, पृथिवीलोक, तत्रस्थ सब प्रजाओं को उनके अन्दर व्याप्त होकर देखनेवाले वे प्रभु ही हैं। प्राणिमात्र की वे अद्वितीय चक्षु हैं—मार्गदर्शक हैं। द्युलोक व पृथिवीलोक के सारे व्यवहार प्रभु के अधिष्ठातृत्व में चल रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोहित का महान् सृष्टियज्ञ

उर्वीरासन्परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत। तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः॥ ४६॥

१. प्रभु ने जब इस सृष्टियज्ञ को आरम्भ किया तब **उर्वीः**=विशाल दिशाएँ **परिधयः आसन्**=परिधियाँ हुईं—परकोटा बनीं। **भूमिः वेदिः अकल्पत**=यह भूमि वेदि बनी और **ततः**=उस भूमिरूप वेदि पर **रोहितः**=उस तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु ने **एतौ**=इन दोनों **अग्नी**=अग्नियों को **आधत्त**=स्थापित किया। **हिमं घ्रंसं च**=एक अग्नि तो शीतल ज्योत्स्नावाली चन्द्ररूप थी तथा द्वितीय अग्नि देदीप्यमान सूर्यरूप थी इस सृष्टियज्ञ के दिन-रात में क्रमशः सूर्य व चन्द्र ही अग्नि हैं। इन्हीं में यह सृष्टियज्ञ चल रहा है।

भावार्थ—प्रभु के इस सृष्टियज्ञ में विशाल दिशाएँ परिधिरूप हैं। भूमि वेदि है और सूर्य व चन्द्र अग्निरूप हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वर्षाज्यौ अग्नी

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान्कृत्वा पर्वतान्। वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः॥ ४७॥

१. **रोहितस्य**=उस तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु के ये **वर्षाज्यौ**=वृष्टिरूप घृतवाले **अग्नी**=सूर्य-चन्द्ररूप अग्नि **हिमं घ्रंसं च**=शीत व आतप को समय-समय पर आहित करके और **पर्वतान् यूपान् कृत्वा**=पर्वतों को यज्ञस्तम्भरूप करके **ईजाते**=इस सृष्टियज्ञ को चलाते हैं। २. इस सृष्टियज्ञ के मुख्य प्रवर्तक ये सूर्य और चन्द्र हैं। इस यज्ञ की वेदिरूप भूमि के स्तम्भ ये पर्वत हैं। ये सूर्य और चन्द्र समय-समय पर शीत व आतप का आदान करते हुए इस यज्ञ को चला रहे हैं।

भावार्थ—यह सृष्टि यज्ञ है। पर्वत यज्ञवेदिरूप भूमि के स्तम्भ हैं। वृष्टि ही यहाँ आज्य (घृत) है। सूर्य और चन्द्र इस यज्ञ की अग्नियाँ हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्मणाग्नि समिध्यते

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद्यज्ञो ऽजायत॥ ४८॥

१. **स्वर्विदः**=सुख व प्रकाश को प्राप्त करानेवाले **रोहितस्य**=सदाप्रवृद्ध प्रभु के **ब्रह्मणा**=वेदज्ञान

से—वेदज्ञान के अनुसार अथवा मन्त्रोच्चारणपूर्वक **अग्निः समिध्यते**=यज्ञवेदि में अग्नि समिद्ध किया जाता है, **तस्मात्**=उस रोहित प्रभु से ही **घ्रंसः**=दीप्ति का कारणभूत यह सूर्य, **तस्मात् हिमः**=उस प्रभु से ही शीतल ज्योत्स्नावाला चन्द्र तथा **तस्मात्**=उस प्रभु से ही **यज्ञः**=यह सृष्टि-यज्ञ **अजायत**=विशिष्टरूप से प्रादुर्भूत होता है।

भावार्थ—प्रभु से आदिष्ट मन्त्रों द्वारा यज्ञवेदि में यज्ञाग्नि समद्धि किया जाता है। वे प्रभु ही सूर्य व चन्द्र द्वारा इस सृष्टि-यज्ञ को चला रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्मेद्धौ' अग्नी

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः॥ ४९॥

१. **स्वर्विदः**=सुख व प्रकाश को प्राप्त करानेवाले **रोहितस्य**=तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु के **ब्रह्मेद्धौ (ब्रह्म इद्धौ)**=ज्ञान द्वारा दीप्त किये गये **अग्नी**=सूर्य व चन्द्ररूप अग्नि **ईजाते**=सृष्टियज्ञ को चलाते हैं। २. ये दोनों **अग्नी**=अग्नियाँ **ब्रह्मणा वावृधानौ**=प्रभु से वेद द्वारा निरन्तर वृद्ध की जाती हैं। **ब्रह्मवृद्धौ**=ब्रह्म द्वारा ये वृद्ध हुई हैं। **ब्रह्माहुतौ**=ब्रह्म द्वारा ये समन्तात् आहुत हुए हैं। प्रभु ने ही इन्हें बनाया है। प्रभु ही इनके प्रकाश को चारों ओर प्राप्त करा रहे है—प्रभु ही तो इनकी प्रभा हैं, 'प्रभास्मि शशिसूर्ययोः'।

भावार्थ—सूर्य-चन्द्ररूप अग्नियों द्वारा यह सृष्टियज्ञ चल रहा है। ये दोनों अग्नियाँ प्रभु द्वारा वृद्ध की गई हैं—प्रभु ही इनके प्रकाश को चारों ओर प्राप्त करा रहे है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

(सत्ये+अप्सु), ज्ञान+कर्म

सत्ये अन्य समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते।
ब्रह्मेद्धवग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः॥ ५०॥

१. **अन्यः**=सूर्यरूप एक अग्नि **सत्ये समाहितः**=सत्य में समाहित हुआ है। उदय होता हुआ सूर्य सब अन्धकार का विनाश करता है। मस्तिष्क में भी उदय होता हुआ ज्ञान का सूर्य सब अज्ञान-अन्धकार का विनाशक बनता है। **अन्यः**=दूसरा चन्द्ररूप अग्नि **अप्सु समिध्यते**=कर्मों में समिद्ध होता है। यज्ञादि सब कर्म 'प्रतिपदा, अष्टमी, एकादशी, पूर्णिमा व अमावास्या' आदि चन्द्र-तिथियों को देखकर ही सम्पन्न होते हैं। 'चदि आह्लादे' आह्लादक चन्द्र भी कर्मों के होने पर उदित होता है। आलस्य में आनन्द की समाप्ति हो जाती है। २. ये दोनों **ब्रह्मेद्धौ अग्नी**=ब्रह्म द्वारा समिद्ध किये गये सूर्य-चन्द्ररूप अग्नि **स्वर्विदः**=ज्ञान व सुख को प्राप्त करानेवाले **रोहितस्य**=तेजस्वी व सदावृद्ध प्रभु के **ईजाते**=सृष्टियज्ञ को चलाते हैं। हमारे जीवनों में भी ज्ञान असत्य को नष्ट करता है तथा कर्म आनन्द के चन्द्र का उदय करते हैं। इसप्रकार ज्ञान व कर्मों द्वारा जीवन-यज्ञ का प्रवर्तन होता है।

भावार्थ—हमारे जीवनों में ज्ञान के सूर्य का उदय होकर सब असत्य का विनाश हो जाए, साथ ही कर्मों में तत्पर हुए-हुए हम आनन्द के चन्द्र को हृदयान्तरिक्ष में उदित कर सकें। ये यज्ञ व कर्म इस जीवनयज्ञ के प्रवर्तक हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वातः+इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः

यं वातः परिशुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।
ब्रह्मोद्धवग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः॥ ५१॥

१. **यम्**=जिस चन्द्र-(आह्लाद)-रूप अग्नि को **वातः**=वायु की भाँति निरन्तर गतिशील पुरुष **परिशुम्भति**=अपने जीवन में अलंकृत करता है। **यं वा**=तथा जिस ज्ञान-सूर्यरूप अग्नि को **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **ब्रह्मणस्पतिः**=वेदज्ञान का पति होता हुआ अपने में सुशोभित करता है। ये दोनों कर्म व ज्ञानरूप **अग्नी**=अग्नियाँ **ब्रह्मोद्धौ**=उस प्रभु द्वारा समिद्ध की जाकर **रोहितस्य स्वर्विदः**=सदावृद्ध व सुख प्राप्त करानेवाले प्रभु के यज्ञ को **ईजाते**=सम्पन्न करती हैं। सारे ब्रह्माण्ड में यह सृष्टि-यज्ञ सूर्य व चन्द्र द्वारा चल रहा है। यही जीवन-यज्ञ इस पिण्ड में ज्ञान व कर्मरूप अग्नियों द्वारा चलता है।

भावार्थ—हम वायु के समान निरन्तर क्रियाशील बनकर हृदय में आनन्द के चन्द्र को उदित करें। जितेन्द्रिय व ज्ञानी बनकर मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य को उदित करें। इसप्रकार प्रभु से प्रदत्त इन ज्ञान व कर्मरूप अग्नियों से हमारा जीवन-यज्ञ सम्प्रवृत्त हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

सृष्टियज्ञ में यज्ञमय जीवन

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम्।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद्वर्षेणाज्येन रोहितः॥ ५२॥

१. **रोहितः**=उस तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु ने **वेदिं भूमिं कल्पयित्वा**= भूमि को यज्ञवेदि के रूप में बनाकर **दिवं दक्षिणां कृत्वा**=द्युलोक को—प्रकाश को यज्ञ की दक्षिणा करके और **घ्रंसम्**=इस दीप्त आतपवाले सूर्य को **तत् अग्निं कृत्वा**=इस यज्ञवेदी की अग्नि बनाकर **वर्षेण आज्येन**=वृष्टिरूप घृत से **आत्मन्वत् विश्वं चकार**=प्रशस्त आत्मशक्तिवाले इस सृष्टियज्ञ को किया। २. प्रभु इस सृष्टियज्ञ में सब लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके जीव को शरीररूप निवास स्थान प्राप्त कराते हैं। इसमें मन आदि साधनों के द्वारा यज्ञ की ओर झुकाववाला होकर यह प्रशस्त जीवनवाला बन पाता है।

भावार्थ—सृष्टि को हम प्रभु द्वारा किये जानेवाले यज्ञ के रूप में देखें। स्वयं भी यज्ञमयजीवनवाले होते हुए प्रशस्तजीवनवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सृष्टियज्ञ की सामग्री

वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पयत्।
तत्रैतान्पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत्॥ ५३॥

१. **अग्निः**=उस अग्रणी प्रभु ने **वर्षं आज्यं अकल्पयत्**=वृष्टि को ही इस सृष्टियज्ञ के लिए घृत के रूप में बनाया। इस यज्ञ में **घ्रंसः**=देदीप्यमान सूर्य ही **अग्निः**=अग्नि हुआ। **भूमिः वेदिः**=यह पृथिवी ही सृष्टि-यज्ञ की वेदि हुई। २. **तत्र**=उस वेदि पर प्रभु ने **गीर्भिः**=वेदवाणियों के द्वारा **एतान् पर्वतान्**=इन पर्वतों को **ऊर्ध्वान् अकल्पयत्**=ऊपर यज्ञस्तम्भों के रूप में खड़ा किया। ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वतरूप यज्ञस्तम्भों पर वेदवाणियाँ अंकित हों। ये हिमाच्छादित पर्वत प्रभु की महिमा का प्रतिपादन तो कर ही रहे हैं।

भावार्थ—इस सृष्टि-यज्ञ में 'वृष्टि' घृत है। 'सूर्य' अग्नि और 'भूमि' वेदि है। यहाँ पर्वत यज्ञस्तम्भ हैं, जिनपर वेदवाणियाँ मानो अंकित हुई हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञों की आधारभूत यह 'भूमि'

गीर्भिरूर्ध्वान्कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत्।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद्भूतं यच्च भाव्य ∫म्॥ ५४॥

१. **गीर्भिः**=वेदवाणियों के द्वारा **ऊर्ध्वान् कल्पयित्वा**=यज्ञस्तम्भों के रूप में ऊपर खड़े हुए पर्वतों को रचकर **रोहितः**=उस तेजस्वी, सदावृद्ध प्रभु ने **भूमिं अब्रवीत्**=इस वेदिरूप भूमि से कहा कि हे भूमे! **इदं सर्वम्**=यह सब **यत् भूतम्**=जो हुआ है **यत् च भाव्यम्**=और जो होना है, वह सब **त्वयि जायताम्**=तुझमें सम्पन्न हो। २. इस सृष्टियज्ञ की वेदि यह भूमि ही है। 'हो चुका व होनेवाला' सब यज्ञ इस वेदि में ही होते हैं। 'भवन्ति भूतानि यस्याम्', 'जिसमें सब प्राणी होते हैं', वही तो भूमि है। एवं, यही भूमि भूत व भाव्य सब यज्ञों का आधार है।

भावार्थ—सब सृष्टियज्ञ इस पृथिवीरूप वेदि पर ही होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीबृहतीगर्भापथ्यापङ्क्तिः**॥

'उत्पादक व धारक' प्रभु

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत्किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम्॥ ५५॥

१. **सः**=वह **भूतः**=सदा से हुआ-हुआ—सदा से वर्तमान **भव्यः**=सदा रहनेवाला प्रभु **प्रथमः**=सर्वव्यापक व सर्वश्रेष्ठ **यज्ञः**=पूजनीय **अजायत**=हुआ। **तस्मात् ह**=उस प्रभु से ही निश्चयपूर्वक **इदं सर्वं जज्ञे**=यह सब-कुछ हुआ। **यत् किञ्च**=जो कुछ भी **इदं विरोचते**=यह चमकता है। 'यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं ममतेजोंऽशः सम्भवम्', जो कुछ विभूति सम्पन्न है, वह सब उस प्रभु से हुआ है। २. प्रभु ने ही इन दीप्त पिण्डों को जन्म दिया है और **रोहितेन**=उस तेजस्वी, सदावृद्ध **ऋषिणा**=(ऋष् to kill) तत्त्वद्रष्टा व अज्ञानान्धकार नाशक प्रभु से ही **भृतम्**=धारण किया गया है।

भावार्थ—प्रभु ही अनादि-अनन्त यज्ञरूप हैं। वह प्रभु ही सब दीप्त पिण्डों को दीप्ति प्राप्त करा रहे हैं। उन सदावृद्ध, तेजस्वी, ज्ञानी प्रभु ने ही सृष्टि को धारण किया हुआ है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गौ व सूर्य का आदर

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम्॥ ५६॥

१. इस सृष्टि में मनुष्य को 'गौ व सूर्य' का आदर करना है। 'गौ' मनुष्य को सात्त्विक दूध प्राप्त कराके 'स्वस्थ शरीर, पवित्र मन व दीप्त मस्तिष्क' प्राप्त कराती है। इसीप्रकार सूर्य की किरणें सब रोगकृमियों का नाश करती हुई उसे स्वास्थ्य प्रदान करती हैं। आयुर्वेद में सूर्याभिमुख होकर मेहन से 'मूत्रकृच्छ' आदि रोग हो जाने का उल्लेख है। २. मन्त्र में कहते हैं कि **यः च गां पदा स्फुरति**=जो निश्चय से गौ को पाँव से कुचलने की करता है (to braise, destroy), **च**=और **सूर्यं प्रत्यङ्**=सूर्याभिमुख होकर **मेहति**=मूत्र करता है, **तस्य ते**=उस तेरे **मूलं**

वृश्चामि=मूल को काट डालता हूँ। तू **अपरम्**=इसके बाद **छायां न करवः**=(छाया beauty) जीवन के सौन्दर्य को करनेवाला न हो, तेरे जीवन का सौन्दर्य समाप्त हो जाए।

भावार्थ—हम जीवन में गौ का समुचित आदर करें, घर में गौ का प्रथम स्थान हो। गौ को घर का मूल समझें। हम सूर्य की किरणों को सदा शरीर पर लेनेवाले बनें। 'सूर्याभिमुख होकर मूत्र करने से रोग हो जाते हैं', इसे कभी न भूलें। 'सूर्याभिमुख मेहन' जीवन के सौन्दर्य को समाप्त करनेवाला है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

यज्ञों में विघ्न करने का परिणाम

यो मा॑भिच्छा॒यम॒त्येषि॒ मां चा॒ग्निं चा॑न्त॒रा।
तस्य॑ वृश्चामि ते॒ मूल॑ं न च्छा॒यां क॑र॒वोऽप॑रम्॥ ५७॥

१. **यः**=जो तू **अभिच्छायाम्**=सौन्दर्य की ओर चल रहे, अर्थात् सुन्दर पथ का आक्रमण कर रहे **मा**=मुझे **अत्येषि**=(अति इ=subdue) दबाता है, सताता है, **तस्य ते**=उस तेरे **मूलं वृश्चामि**=मूल को मैं काट देता हूँ। वस्तुतः उत्तम पथ पर चल रहे व्यक्तियों को पीड़ित करनेवाले को समाप्त कर देना आवश्यक ही है। २. **मां च अग्निं च अन्तरा**=मेरे और अग्नि के बीच में जो तू (अत्येषि) अतिशयेन आता है वह तू **अपरम्**=इसके बाद **छायां न करवः**=सौन्दर्य को करनेवाला न हो। एक व्यक्ति और अग्नि के बीच में आने का भाव है 'यज्ञों में विघ्न करना'। जो भी यज्ञ करते हुए पुरुष के लिए विघ्न करनेवाला बनता है उसका सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। वह यज्ञविहन्ता देव न रहकर असुर बन जाता है।

भावार्थ—सुन्दर पथ पर चलते हुए व्यक्ति को विहत करनेवाला नष्ट हो जाता है। यजनशील के यज्ञ का विघातक पुरुष अपने जीवन के सौन्दर्य को समाप्त कर लेता है

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'दुःष्वप्न्य शमल व दुरित' दूरीकरण

यो अ॒द्य दे॑व सूर्य॒ त्वां च॒ मां चा॑न्तरा॒यति।
दुः॒ष्वप्न्यं॒ तस्मि॒च्छमलं॑ दुरि॒तानि॑ च मृ॒ज्महे॥ ५८॥

१. हे **देव सूर्य**=प्रकाशमय गतिशील प्रभो! **अद्य**=आज **यः**=जो भी बात **त्वां च मां च अन्तरा**=आपके और मेरे बीच में **अयति**=आती है, अर्थात् मुझे आपके दर्शन से रोकती है, **तस्मिन्**=उसके निमित्त—उसे दूर करने के लिए **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों के कारणभूत प्रत्येक वस्तु को, **शमलम्**=(sin, moral impurity) नैतिक दोषों को, **दुरितानि च**=और अशुभ कर्मों को **मृज्महे**=दूर करते हैं। २. ये 'दुःष्वप्न्य, शमल व दुरित' ही हमें प्रभु-दर्शन से वंचित करने का कारण बनते हैं। इन्हें दूर करके हम अपने जीवन का शोधन करते हुए अपने को प्रभु-दर्शन के योग्य बनाते हैं।

भावार्थ—उस 'प्रकाशमय, गति के स्रोत' प्रभु का दर्शन उसे ही होता है जो 'दुःष्वप्नों, शमलों व दुरितों' को दूर कर पाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**

मार्ग पर

मा प्र गा॑म प॒थो व॒यं मा य॒ज्ञादि॑न्द्र सो॒मिनः॑। मान्त स्थु॑र्नो अरा॑तयः॥ ५९॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! **वयम्**=हम **पथः मा प्रगाम**=मार्ग

से विचलित न हों। मार्गभ्रष्ट होकर हम आपसे दूर न हो जाएँ। हे प्रभो! हम **सोमिनः**=अपने में सोम (वीर्यशक्ति) का रक्षण करनेवाले **यज्ञात्**=यज्ञ से—देवपूजा, संगतिकरण व दानरूप उत्तम कर्म से दूर न हों। बड़ों के आदर, परस्पर प्रेम व दान की वृत्तिवाले बनकर हम शरीर में सोम का रक्षण कर पाएँ। ३. हे प्रभो! आप ऐसा अनुग्रह कीजिए कि **अरातयः**=काम-क्रोध-लोभादि शत्रु **नः अन्तः मा स्थुः**=हमारे अन्दर स्थित न हों। हमारा हृदय इन कामादि का अधिष्ठान न हो। इन शत्रुओं से अपने हृदय को शून्य करके ही हम आपके दर्शन के योग्य बन पाएँगे।

भावार्थ—हम मार्गभ्रष्ट न हों, यज्ञशील, 'काम-क्रोध-लोभ' से शून्य हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**गायत्री**॥

यज्ञस्य प्रसाधनः

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतमशीमहि॥ ६०॥

१. **यः**=जो प्रभु **यज्ञस्य प्रसाधनः**=सब यज्ञों को सिद्ध करनेवाले हैं, 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च'। सब यज्ञ प्रभुकृपा से ही पूर्ण हुआ करते हैं। जो प्रभु **देवेषु**=सूर्यादि सब देवों में **आततः तन्तुः**=फैले हुए तन्तु हैं। वस्तुतः प्रभु के कारण ही उस-उस पिण्ड में वह-वह शक्ति दृष्टिगोचर होती है। **'पुण्यो गन्धः पृथिवीं च रसोऽहमप्सु कौन्तेय। तेन शक्तिरस्मि विभावसौ प्रभास्मि शशिसूर्ययोः॥ तेजस्तेजस्विनामहं बलं बलवतः चाहम्। बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि।'** २. **तम्**=उस **आहुतम्**=समन्तात् दानोंवाले प्रभु को **अशीमहि**=हम सेवन करनेवाले बने, प्रभु का ही मनन करें।

भावार्थ—प्रभु सब यज्ञों के साधक हैं, सब देवों में व्याप्त सूत्र हैं। इन प्रभु के ही दान समन्तात् दृष्टिगोचर होते हैं। इनका हम उपासन करें।

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'आदित्य मीढ्वान्' प्रभु

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः॥ १॥

१. **अस्य**=इस प्रभु की **केतवः**=प्रकाश की किरणें **शुक्राः**=(शुच दीप्तौ) अतिशयेन पवित्र व **भ्राजन्तः**=दीप्त होती हुई **दिवि उत् ईरते**=सम्पूर्ण द्युलोक में व सब व्यवहारों में उद्गत होती हैं। सम्पूर्ण आकाश में, आकाशस्थ एक-एक पिण्ड में प्रभु की रचना का कौशल व विज्ञान दीप्त हो रहा है। २. उस प्रभु का प्रकाश सर्वत्र दीखता है जोकि **आदित्यस्य**=(आदानात्) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने एक देश में लिये हुए हैं। **नृचक्षसः**=मनुष्यमात्र का ध्यान कर रहे हैं अथवा सभी के कर्मों को देख रहे हैं। **महिव्रतस्य**=महनीय व्रतोंवाले हैं और **मीढुषः**=सबपर सुखों का सेचन करनेवाले हैं। हम भी आदित्य बनें—सब अच्छाइयों को अपने अन्दर लेनेवाले बनें। नृचक्षसः=केवल अपना ध्यान न करके औरों का भी ध्यान करनेवाले बनें। महनीय व्रतों को धारण करें, इसप्रकार सबपर सुखों का वर्षण करने के लिए यत्नशील हों।

भावार्थ—हम प्रभु का 'आदित्य, नृचक्षसः महिव्रत व मीढ्वान्' नामों से स्मरण करते हुए स्वयं भी ऐसा बनने का प्रयत्न करें। सृष्टि में सर्वत्र प्रभु के प्रकाश को देखने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'भुवन-गोपा' सूर्य (प्रभु)

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः॥ २॥

१. हम **सूर्यं स्तवाम**='ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः' सूर्यसमंज्योति ब्रह्म को स्तुत करते हैं, जो प्रभु **अर्चिषा**=अपनी ज्ञानदीप्ति से, प्रकाश की किरणों से **प्रज्ञानाम्**=(प्रज्ञापिनीनाम्) जीव के मार्गों का ज्ञान देनेवाली **दिशाम्**=दिशाओं का—निर्देशों व संकेतों का **स्वरयन्तम्**=उपदेश कर रहे हैं **सुपक्षम्**=उत्तम परिग्रह व आश्रय देनेवाले हैं। **आशुम्**=संसार में सर्वत्र व्याप्त हैं। **अर्णवे पतयन्तम्**=संसार-समुद्र में ऐश्वर्यवाले हैं। जहाँ-जहाँ कुछ भी उत्तमता है वह सब उस प्रभु के कारण ही तो है। २. उन प्रभु का स्तवन करते हैं जो **भुवनस्य गोपाम्**=सारे ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं, और **यः**=जो **रश्मिभिः**=अपनी प्रकाश की किरणों से **सर्वाः दिशः आभाति**=सब दिशाओं को आभासित कर रहे हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करते हैं। प्रभु हमें जीवनमार्ग की दिशाओं का संकेत कर रहे हैं। सर्वत्र व्याप्त होते हुए वे हमारे उत्तम आश्रय-स्थान हैं। संसार में सर्वत्र उन्हीं का ऐश्वर्य दीप्त हो रहा है। वे प्रभु ही ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'प्राङ्-प्रत्यङ्' व्याप्त प्रभु

यत्प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया।
तदादित्य महि तत्ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे॥ ३॥

१. हे प्रभो! **यत्**=जो आप **स्वधया**=अपनी धारणशक्ति से **शीभम्**=शीघ्र ही **प्राङ् प्रत्यङ् यासि**=पूर्व से पश्चिम तक सर्वत्र गतिवाले होते हैं, वे आप **मायया**=अपनी दिव्य ज्ञानशक्ति से **नानारूपे**=भिन्न-भिन्न रूपोंवाले **अहनी कर्षि**=दिन-रात को बनाते हैं। प्रभु ने वस्तुतः दिन व रात के क्रमवाला यह सृष्टिक्रम कितना सुन्दर बनाया है। २. हे **आदित्य**=सारे ब्रह्माण्ड का अपने में आदान करनेवाले प्रभो! **ते**=आपका **तत्**=जो **महि**=महान् व पूजनीय **श्रवः**=यश है, आप **विश्वं भूम परिजायसे**=सारे ब्रह्माण्ड में चारों ओर प्रादुर्भूत हो रहे हैं, सर्वत्र आपकी महिमा का प्रकाश हो रहा है।

भावार्थ—पूर्व से पश्चिम तक सर्वत्र प्रभु व्याप्त हो रहे हैं। प्रभु ने अपनी माया से क्या ही सुन्दर दिन व रात्रि का क्रम बनाया है। प्रभु का यश महान् है। वे प्रभु सर्वत्र अपनी महिमा से प्रादुर्भूत हो रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'आजिम् परियान्तम्' (सूर्यम्)

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः।
स्तुताद्यमत्रिर्दिवमुन्निनाय यं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम्॥ ४॥

१. **विपश्चितम्**=सबको देखनेवाले **तरणिम्**=अन्धकार से तरानेवाले **भ्राजमानम्**=देदीप्यमान **यम्**=जिस सूर्य को **सप्त बह्वीः हरितः**=सात रंगोंवाली अनेक किरणें **वहन्ति**=सर्वत्र प्राप्त कराती हैं, **यम्**=जिसको **अत्रिः**=(अ अत्रि) त्रिगुणातीत प्रभु **स्तुतात्**=स्तुत के हेतु से—आकाश से वृष्टि-जल के वर्षण के हेतु से **दिवम् उन्निनाय**=द्युलोक में प्राप्त कराते हैं, **तं त्वा**=उस तुझ सूर्य को

आजिम् परियान्तम्=(race-course, road-way) मार्ग पर गति करते हुए को **पश्यन्ति**=ज्ञानी लोग देखते हैं। २. ज्ञानी पुरुष सूर्य में प्रभु की महिमा को देखते हुए आश्चर्य करते हैं कि (क) किस प्रकार यह दीप्त सूर्य करोड़ों किलोमीटरों तक अन्धकार को समाप्त कर देता है, (ख) इसकी सात रंगों में विभक्त अनन्त किरणें किस प्रकार विविध प्राणशक्तियों का हममें संचार कर रही हैं, (ग) किस प्रकार यह सूर्य दृष्टि का हेतु बनकर सब अन्नों का उत्पादक बनता है, (घ) किस प्रकार यह सूर्य अपने मार्ग पर आकृष्ट लोकसमूह के साथ आगे बढ़ रहा है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर करते हुए सप्त वर्ण की किरणों से प्राणदायी तत्त्वों का संचार करते हुए वृष्टि का हेतु बनते हुए सूर्य को देखते हैं और प्रभु की महिमा का स्मरण करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'दिन-रात का बनानेवाला' सूर्य

मा त्वा॑ दभन्परि॒यान्तं॒माजिं स्व॒स्ति दुर्गाँ॑ अति॑ याहि॒ शीभ॑म्।
दिवं॑ च सूर्य पृथि॒वीं च॑ दे॒वीमहो॑रा॒त्रे वि॒मिमा॑नो॒ यदेषि॑॥ ५॥

१. हे **सूर्य**=सूर्य! **आजिम् परियन्तम्**=मार्ग पर आगे बढ़ते हुए **त्वा**=तुझे **मा दभन्**=कोई भी हिंसित नहीं कर पाते। तू **शीभम्**=शीघ्र ही **दुर्गान्**=दुःखेन गन्तव्य सब (दुर्ग) मार्गों को **अतियाहि**=लांघकर चलनेवाला हो और **स्वस्ति**=हमारे कल्याण का कारण बन। हे सूर्य! **अहोरात्रे**=दिन और रात्रि का **विमिमानः**=मापपूर्वक निर्माण करता हुआ **यत् एषि**=जब तू गति करता है तब तू **दिवं च**=इस द्युलोक को **देवीं पृथिवीम्**=दिव्यगुणोंवाली पृथिवी को हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण का साधन बनाता है। सूर्य के कारण सब देव हमारे लिए कल्याण का साधन बनते हैं। सूर्य केन्द्र में है और सब लोक-लोकान्तर इसके चारों ओर गति कर रहे हैं। सूर्य इन सबको हमारे लिए कल्याणकर बनाता है।

भावार्थ—मार्ग पर चलते हुए सूर्य को कोई भी विघ्न रोक नहीं पाते। दिन व रात्रि का निर्माण करता हुआ यह सूर्य सब लोकों को हमारे लिए हितसाधक बनाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सूर्यरथ

स्व॒स्ति ते॑ सूर्य च॒रसे॒ रथा॑य॒ येनो॒भावन्तौ॑ परि॒यासि॑ स॒द्यः।
यं ते॒ वह॑न्ति॒ हरितो॒ वहि॑ष्ठाः श॒तमश्वा॒ यदि॑ वा स॒प्त ब॒ह्वीः॥ ६॥

१. हे **सूर्य**=सूर्य! **ते चरसे रथाय**=तेरे निरन्तर चलनेवाले इस रथ के लिए **स्वस्ति**=उत्तम स्थिति हो, **येन**=जिस रथ के द्वारा **उभौ अन्तौ सद्यः परियासि**=दोनों अन्तों को, पूर्व व पश्चिम को अथवा उत्तरायण व दक्षिणायन को तू शीघ्र ही जानेवाला होता है। २. **यं ते**=जिस तेरे रथ को **वहिष्ठाः हरितः वहन्ति**=वहन करने में सर्वोत्तम ये किरणरूप अश्व वहन करते हैं। ये किरणें ही **शतं अश्वाः**=तेरे रथ के सैकड़ों घोड़े हैं। **यदि वा**=अथवा **सप्त**=सात रंगोंवाली **बह्वीः**=(बृहि वृद्धौ) वृद्धि की कारणभूत किरणें तेरे रथ का वहन करती हैं।

भावार्थ—सूर्य अपने रथ से पूर्व से पश्चिम में अथवा उत्तरायण से दक्षिणायन में गतिवाला होता है। इस सूर्यरथ का वहन करनेवाली किरणें विविध प्रकार के प्राणदायी तत्त्वों को हमारे लिए प्राप्त कराती हुई हमारी वृद्धि का कारण बनती हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सुख-स्योना, सुवह्नि' रथ

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः॥ ७॥

१. हे **सूर्य**=सूर्य! तू **रथम् अधितिष्ठ**=इस रथ पर अधिष्ठित हो, जो रथ **सुखम्**=हमारी सब इन्द्रियों की उत्तमता का कारण बनता है। **अंशुमन्तम्**=जो प्रकाश की किरणोंवाला है। **स्योनम्**=हमारे लिए सुख करनेवाला है। **सुवह्निम्**=हमें स्वस्थ बनाता हुआ लक्ष्यस्थान की ओर ले-चलनेवाला है और **वाजिनम्**=हमें शक्तिशाली बनाता है। २. उस रथ पर तू अधिष्ठित हो **यं ते**=जिस तेरे रथ को **वहिष्ठाः हरितः वहन्ति**=वहनक्रिया में सर्वोत्तम किरणरूप अश्व वहन करते हैं **शतं अश्वाः**=सैकड़ों किरणाश्व इस तेरे रथ का वहन करनेवाले हैं। **यदि वा**=अथवा **सप्त बह्वीः**=सात रंगोंवाली—सात प्राणदायी तत्त्वों को प्राप्त करानेवाली, अतएव प्राणियों की वृद्धि की कारणभूत ये किरणें तेरे रथ का वहन करती हैं।

भावार्थ—यह सूर्य का रथ अपने मार्ग पर किरणरूप अश्वों से आगे और आगे बढ़ता है। यह प्राणियों के लिए इन्द्रियों का स्वास्थ्य प्रदान करता है, अतएव उनके लिए सुखद व उन्हें लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाला होता है। यह उन्हें शक्तिशाली बनाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'सप्ताश्व' सूर्य

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद्विधूय देवस्तमो दिवमारुहत्॥ ८॥

१. **सूर्यः**=सूर्य **यातवे**=मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए **रथे**=अपने रथ में **सप्त**=सात रंगोंवाली **हिरण्यत्वचसः**=ज्योति के सम्पर्कवाली **बृहती**=वृद्धि की कारणभूत **हरितः**=किरणों को **अयुक्त**=जोतता है। सूर्य के रथ में किरणरूप अश्व जुते हैं। ये सात रंगोंवाले हैं, इसी से सूर्य का नाम 'सप्ताश्व' हो गया है। इन किरणों का हिरण्य=ज्योति के साथ सम्पर्क है। हमारी वृद्धि का ये कारण बनती हैं। २. **शुक्रः**=वह दीप्त सूर्य **रजसः**=सब अन्धकार (gloom) से **परस्तात् अमोचि**=सुदूर छोड़ा गया है। यह **देवः**=प्रकाशमय सूर्य **तमः विधूय**=सब अन्धकार को कम्पित करके **दिवं आरोहत**=द्युलोक में आरुढ़ हुआ है।

भावार्थ—सूर्य सप्ताश्व है, इसकी सात किरणें हमारे लिए प्राणदायी तत्त्वों को प्राप्त कराती हुई हमारी वृद्धि का कारण बनती हैं। अन्धकार से परे वर्तमान यह सूर्य द्युलोक में आरुढ़ हुआ है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'आदिति-पुत्र' सूर्य

उत्केतुना बृहता देव आगन्नपावृक्तमोऽभि ज्योतिरश्रैत्।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्य ख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा॥ ९॥

१. **देवः**=यह प्रकाशमान सूर्य **बृहतः केतुना**=वृद्धि के कारणभूत प्रकाश के साथ **उत् आगन्**=उदित हुआ है। इस सूर्य ने **तमः अपावृक्**=सब अन्धकार को दूर कर दिया है, **ज्योतिः अश्रैत्**=ज्योति का आश्रय किया है। २. **सः दिव्यः**=वह सूर्य सब अन्धकार के विजय की कामनावाला है, **सुपर्णः**=उत्तमता से हमारा पालन व पूरण करनेवाला है। **वीरः**=रोगकृमियों को

कम्पित करके दूर करनेवाला है। यह **अदितेःपुत्रः**=(अ-दिति) शरीर के पवित्रीकरण द्वारा स्वास्थ्य का त्राण करनेवाला सूर्य **विश्वा भुवनानि**=सब भुवनों को **व्यख्यत्**=विशेषरूप से देखता है (look) अथवा प्रकाशित करता है (Illuminate)।

भावार्थ—सूर्य उदित होता है, अन्धकार को दूर करके प्रकाश करता है। हमें नीरोग बनाता है, रोगकृमियों को कम्पित करके विनष्ट करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

'विश्वरूप पोषक' सूर्य

उद्यन्रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान्परिभूर्भ्राजमानः॥ १०॥

१. हे सूर्य! **उद्यन्**=उदय होता हुआ तू **रश्मीन् आतनुषे**=प्रकाश की किरणों को चारों ओर विस्तृत करता है। प्रकाश की किरणों के द्वारा **विश्वा रूपाणि**=सब सौन्दर्यों का (beauty, elegance, grace) तू **पुष्यसि**=पोषण करता है। २. **उभा समुद्रौ**=दोनों समुद्रों को—पृथिवीस्थ समुद्र को तथा अन्तरिक्ष में मेघरूप समुद्र को **क्रतुना**=अपने कर्म के द्वारा तू **विभासि**=दीप्त करता है। सूर्य की क्रिया द्वारा ही अन्तरिक्षस्थ समुद्र की उत्पत्ति होती है तथा वृष्टि होकर नदी-प्रवाहों से पृथिवीस्थ समुद्र का पूरण होता है। **सर्वान् लोकान् परिभूः**=तू सब लोकों को चारों ओर से व्याप्त करता है। **भ्राजमानः**=दीप्त है। सूर्य अपने प्रकाश से सब लोकों को प्रकाशित करता है।

भावार्थ—रश्मियों का विस्तार करता हुआ सूर्य सब सौन्दर्यों का पोषण करता है। पृथिवीस्थ व अन्तरिक्षस्थ समुद्रों का निर्माण करता है। सब लोकों को प्रकाश से व्याप्त करता हुआ चमक रहा है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्**॥

दो शिशु (सूर्य और चन्द्र)

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति॥ ११॥

१. **एतौ**=ये दो **शिशू**=प्रभु के सन्तानों के समान सूर्य और चन्द्रमा **मायया**=प्रभु की माया से—अद्भुत रचना कौशल से (Extraordinary power, wisdom), **क्रीडन्तौ**=खेलते हुए-से **पूर्वापरं चरतः**=पूर्व से पश्चिम की ओर गति करते हैं, इस प्रकार **अर्णवं परियातः**=अन्तरिक्ष में सर्वत्र गति करते हैं। २. इनमें **अन्यः**=एक 'सूर्य' **विश्वा भुवना विचष्टे**=सब लोकों को प्रकाशित करता है और **अन्यम्**=दूसरे 'चन्द्र' को **हरितः**=सूर्यरश्मियाँ ही **हैरण्यैः**=हितरमणीय प्रकाशों से **वहन्ति**=ले-चलती हैं। सूर्य की किरणें ही चन्द्र को ज्योतिर्मय करती हैं। सूर्य का आतप चन्द्र में प्रतिक्षिप्त होने पर 'ज्योत्स्ना' के रूप में हो जाता है और हमारे लिए हितरमणीय बन जाता है।

भावार्थ—प्रभु की माया से सूर्य व चन्द्र आकाश में क्रीड़ा करते हुए पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं। सूर्य सब भुवनों को प्रकाशित करता है और चन्द्र अपनी हितरमणीय ज्योत्स्ना द्वारा हमें आनन्दित करनेवाला होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'काल-निर्माता' सूर्य

दिवि त्वात्रिरधारयत्सूर्या मासाय कर्तवे।
स एषि सुधृतस्तपन्विश्वा भूतावचाकशत्॥ १२॥

१. हे **सूर्य**=रविमण्डल! **अत्रिः**=उस त्रिगुणातीत प्रभु ने (अ-त्रि) **त्वा**=तुझे **मासाय कर्तवे**=मास आदि कालविभागों को करने के लिए **दिवि अधारयत्**=द्युलोक में धारण किया है। २. **सः**=वह तू **सुधृतः**=सम्यक् धारण किया हुआ **तपन्**=अत्यन्त दीप्त होता हुआ **विश्वा भूता अवचाकशत्**=सब प्राणियों को देखता हुआ **एषि**=गति करता है।

भावार्थ—सूर्य की गति से ही मास आदि काल-विभाग चलता है। यह सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ व सब प्राणियों को देखता हुआ चलता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उभौ अन्तौ

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव। नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः॥ १३॥

१. हे सूर्य! तू **इव**=जिस प्रकार **वत्सः मातरौ सं (अर्षति)**=एक सन्तान माता-पिता को सम्यक् प्राप्त होता है उसीप्रकार तू भी **उभौ अन्तौ सं अर्षसि**=द्युलोक व पृथिवीलोक दोनों अन्तों को प्राप्त होता है। तेरी किरणें द्युलोक व पृथिवीलोक दोनों में फैली हैं। २. **ननु**=निश्चय से **अमी देवाः**=वे देववृत्ति के पुरुष **इतः**=तेरे इस ज्ञान के द्वारा **पुरा**=(पृ पालनपूरणयोः) पालन व पूरण के साथ **एतत् ब्रह्म विदुः**=इस ब्रह्म को जानते हैं। देवलोग सूर्य के ज्ञान से, सूर्य का ठीक प्रकार प्रयोग करते हुए अपने स्वाध्य व आयुष्य का रक्षण करते हैं तथा सूर्य के अन्दर प्रभु की महिमा का दर्शन भी करते हैं कि किस प्रकार सूर्य द्युलोक व पृथिवीलोक दोनों को ही अपनी किरणों से व्याप्त करता है। किस प्रकार पूर्व व पश्चिम में प्राप्त होता है। किस प्रकार कभी उत्तरायण में तो कभी दक्षिणायन में।

भावार्थ—सूर्य एक ओर द्युलोक को तो दूसरी ओर पृथिवी को अपनी किरणों से व्याप्त करता है। पूर्व में उदित होता है, पश्चिम में अस्त होता है। कभी उत्तर की ओर झुका प्रतीत होता है, कभी दक्षिण की ओर। ये सब व्यवस्थाएँ हमारे पालन के लिए आवश्यक हैं। वस्तुतः विचित्र ही है महिमा उस महान् प्रभु की!

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'वृष्टि व कालचक्र' का कारणभूत सूर्य

यत्समुद्रमनु श्रितं तत्सिषासति सूर्यः। अध्वास्य विततो महान्पूर्वश्चापरश्च यः॥ १४॥

१. **यत्**=जो जल **समुद्रं अनुश्रितम्**=समुद्र में आश्रय किये हुए है, **तत्**=उसे **सूर्यः**=सूर्य **सिषासति**=समविभक्त करना चाहता है। सूर्य समुद्र-जल को अपनी किरणों के द्वारा वाष्पीभूत करके ऊपर ले-जाता है, मानो सूर्य समुद्र-जल का पान करता है। २. **अस्य**=इस सूर्य का **यः अध्वा**=जो मार्ग **पूर्वः च अपरः च**=पूर्व से पश्चिम तक **विततः**=फैला हुआ है, वह निश्चय से **महान्**=अतिशयेन बड़ा है अथवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सूर्य का मार्ग ही सब कालचक्र का कारण बनता है।

भावार्थ—सूर्य ही समुद्र-जल को वाष्पीभूत करके ऊपर ले-जाता है और मेघ-निर्माण द्वारा वृष्टि का कारण बनता है। पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ सूर्य का मार्ग ही कालचक्र का

निर्माण करनेवाला बनता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्मप्राप्ति के लिए तीन बातें

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते॥ १५॥

१. **तम्**=उस सूर्यसम ज्योति ब्रह्म को **जूतिभिः समाप्नोति**=कर्त्तव्यकर्मों को वेग से, अप्रमाद से करने के द्वारा प्राप्त करता है। **ततः**=उस ब्रह्म से **न अप चिकित्सति**=ये दूर रहने की कामना नहीं करता, ब्रह्म-प्राप्ति की प्रबल कामनावाला होता है। २. **तेन**=उस ब्रह्म-प्राप्ति के उद्देश्य से ही **देवानाम्**=देवों के **अमृतस्य भक्षम्**=अमृत के भोजन को ये ब्रह्म-प्राप्ति के इच्छुक पुरुष **न अवरुन्धते**=नहीं रोकते, अर्थात् देवों की भाँति ये अमृत का भोजन करेनवाले होते हैं। यज्ञशेष ही अमृत है, अमृत का सेवन करते हुए ये ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—ब्रह्म-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि (क) हम कर्त्तव्यकर्मों को अप्रमाद से करनेवाले हों, (ख) ब्रह्म-प्राप्ति की प्रबल इच्छावाले हों, (ग) यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

'जातवेदा देवः सूर्य' का धारण

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ १६॥

१. **केतवः**=ज्ञानीपुरुष **त्यम्**=उस **जातवेदसम्**=(जातेजाते विद्यते) सर्वत्र व्याप्त (जातं जातं वेत्ति) सर्वज्ञ प्रभु को **उ**=निश्चय से **उद् वहन्ति**=हृदय में धारण करते हैं। प्रभु **देवम्**=प्रकाशमय हैं, **सूर्यम्**=सूर्यसम ज्योति हैं, अथवा सबको हृदयस्थरूपेण प्रेरणा देनेवाले हैं (सुवति)। २. ये ज्ञानी पुरुष इसलिए प्रभु को हृदयों में धारण करते हैं, जिससे **दृशे विश्वाय**=सम्पूर्ण संसार का दर्शन कर सकें। प्रभु के हृदय में होने पर यह सब-कुछ ज्ञात हो ही जाता है।

भावार्थ—ज्ञानी लोग हृदयों में प्रभु का स्मरण करते हैं, जिससे सम्पूर्ण संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

वासना-नक्षत्र-विलय

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे॥ १७॥

१. **विश्वचक्षसे**=सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करनेवाले **सूराय**=सूर्य के लिए **अक्तुभिः**=रात्रियों के साथ **नक्षत्रा अपयन्ति**=सब नक्षत्र इस प्रकार दूर भाग जाते हैं **यथा**=जैसे **त्ये तायवः**=वे चोर भाग जाते हैं। २. इसी प्रकार उस ब्रह्म का हृदय में प्रकाश होने पर अज्ञान-अन्धकाररूप रात्रियों के साथ वासनारूप नक्षत्र भी विलीन हो जाते हैं।

भावार्थ—हम हृदयों में प्रभु का ध्यान करें, यही वासनाओं को विलीन करने का मार्ग है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

केतवः रश्मयः

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥ १८॥

१. **अस्य**=इस उदित हुए-हुए सूर्य की **केतवः**=प्रज्ञापक प्रकाश देनेवाली **रश्मयः**=प्रकाश की किरणें **जनान् अनु**=मनुष्यों का लक्ष्य करके **वि अदृश्रन्**=इसप्रकार विशिष्टरूप से दिखती

हैं, **यथा**=जैसेकि **भ्राजन्तः अग्नयः**=चमकती हुई अग्नियाँ। २. सूर्य के उदित होने पर जैसे सूर्य की किरणें सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाली होती हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन में ज्ञान के सूर्य का उदय होता है और जीवन प्रकाशमय हो जाता है। ये प्रकाश देदीप्यमान अग्नि के समान होता है। इसमें सब बुराइयाँ भस्म हो जाती हैं।

भावार्थ—हमारे जीवन में ज्ञान का उदय हो और हमारी सब बुराइयाँ अन्धकार के समान विलीन हो जाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

त्रिविध स्वास्थ्य

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचन॥ १९॥

१. हे **सूर्य**=सूर्य! **तरणिः**=तू हमें रोगों से तारनेवाला है। उदय होता हुआ सूर्य रोग-कृमियों को नष्ट करता है और इसप्रकार हमें नीरोग बनाता है। **विश्वदर्शतः**=(विश्वं दर्शतं द्रष्टव्यं यस्य) सूर्य सारे संसार का पालन करता है (दृश् to look after)। **ज्योतिषकृत् असि**=तू सर्वत्र प्रकाश करनेवाला है। हे **रोचन**=सर्वत्र प्रकाश करनेवाले! तू **विश्वं आभासि**=सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को समन्तात् प्रकाशित कर देता है। सूर्य के उदय होते ही सम्पूर्ण अन्तरक्षि सब ओर से चमक जाता है। २. सूर्य शरीर को रोगों से रहित करके स्वस्थ बनाता है (तरणि)। मस्तिष्क को यह ज्योर्तिमय करता है (ज्योतिष्कृत्) और हृदयान्तरिक्ष को सब मलिनताओं से रहित करके चमका देता है एवं सूर्य के प्रकाश का प्रभाव 'शरीर, मस्तिष्क व मन' सभी को सौन्दर्य प्रदान करनेवाला है।

भावार्थ—सूर्य 'शरीर, मन व मस्तिष्क' के विविध स्वास्थ्य को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

'देव व मानुष' बनकर 'ब्रह्मदर्शन'

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्व ∫ र्दृशे॥ २०॥

१. हे सूर्य! तू **देवानां विशः प्रत्यङ्**=देवों की प्रजाओं के प्रति गति करता हुआ **उदेषि**=उदित होता है, अर्थात् सूर्य का प्रकाश प्रजाओं को दिव्यगुणोंवाला व दैवीवृत्तिवाला बनाता है। सूर्य के प्रकाश में रहनेवाले लोग दिव्यगुणोंवाले बनते हैं। सूर्य का प्रकाश मन पर अत्यन्त स्वास्थ्यजनक प्रभाव डालता है। **मानुषीः प्रत्यङ् उदेषि**=मनुष्यों के प्रति गति करता हुआ यह सूर्य उदय होता है। सूर्य हमें मानुष बनाता है। मानुष वह है जो 'मत्वा कर्माणि सीव्यति' विचारपूर्वक कर्म करता है। सूर्य के प्रकाश में रहनेवाले व्यक्ति समझ से काम करनेवाले होते हैं अथवा सूर्य मनुष्यों के प्रति उदित होता है—दयालुओं के प्रति। सूर्यप्रकाश मनुष्य की मनोवृत्ति को अक्रूर बनाता है। सामान्यतः हिंसावृत्ति के पशु व असुर रात्रि के अन्धकार में ही कार्य करते हैं। सूर्य का प्रकाश उनके लिए अरुचिकर होता है। २. **स्वर्दृशे**=उस स्वयं राजमान ज्योति 'ब्रह्म' के दर्शन के लिए तू **विश्वं प्रत्यङ्**=सबके प्रति गति करता हुआ उदय होता है। इस उदय होते हुए सूर्य में द्रष्टा को प्रभु की महिमा का आभास मिलता है। यह सूर्य उसे प्रभु की विभूति के रूप में दीखता है।

भावार्थ—सूर्य का प्रकाश हमें देव व मानुष बनाता है और प्रभु का दर्शन कराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

भुरण्यन्=लोकभरण करनेवाला

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि॥ २१॥

१. हे **पावक**=प्रकाश से जीवनों को पवित्र करनेवाले! हे **वरुण**=सब रोगों व आसुर-भावनाओं का निवारण करनेवाले सूर्य! **त्वम्**=तू **जनान् भुरण्यन्तम्**=लोगों का भरण व पोषण करनेवाले को—लोकों के धारणात्मक कर्मों में लगे हुए पुरुष को **येन चक्षसा**=जिस प्रकाश से **अनुपश्यसि**=अनुकूलता से देखता है, उसी प्रकाश को हम प्राप्त करें। वही प्रकाश हमसे स्तुति के योग्य हो। २. जो लोग द्वेष का निवारण करके (वरुण) अपने हृदय को पवित्र बनाकर (पावक) लोकहितकारी कार्यों में प्रवृत्त होते हैं (भुरण्यन्तम्) उनके लिए सूर्य का प्रकाश सदा हितकारी होता है। वस्तुतः हमारी वृत्ति उत्तम हो तो संसार भी हमारे लिए उत्तम होता है। हमारी दृष्टि में न्यूनता आने पर प्रकृति के देवता भी हमारे लिए उतने हितकर नहीं रहते।

भावार्थ—सूर्य का प्रकाश उनके लिए हितकर होता है जो लोकों का भरण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

दिन-रात्रि का निर्माण

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य॥ २२॥

१. हे **सूर्य**=आकाश में निरन्तर सरण करनेवाले आदित्य! तू **द्याम्**=इस विस्तृत द्युलोक में **वि एषि**=विशेषरूप से गतिवाला होता है। द्युलोक में सूर्य का उदय होता है और वह सूर्य इस द्युलोक में आकर **पृथुरजः**=इस विस्तृत अन्तरिक्षलोक में आगे-आगे बढ़ता है। इस गति के द्वारा **अक्तुभिः**=प्रकाश की किरणों के द्वारा (रात्रियों के साथ) **अहः मिमानः**=दिन को यह निर्मित करता है। २. इसप्रकार दिन व रात्रियों के निर्माण से यह सूर्य **जन्मानि**=सब जन्म लेनेवाले प्राणियों को **पश्यन्**=देखता है, अर्थात् सब प्राणियों का पालन करता है। यदि केवल दिन-ही-दिन होता तो मनुष्य कर्म करते-करते श्रान्त होकर समाप्त हो जाता और रात्रि-ही-रात्रि होती तो मनुष्य को आराम करते-करते जंग ही खा जाता। एवं, यह दिन-रात का चक्र मनुष्य का सुन्दरता से पालन कर रहा है। इस चक्र के द्वारा सूर्य सब प्राणियों का रक्षण करता है।

भावार्थ—सूर्य उदित होकर अन्तरिक्ष में आगे बढ़ता हुआ दिन-रात्रि के निर्माण के द्वारा हमारा पालन करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

सप्ताश्व

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षणम्॥ २३॥

१. हे **देव**=द्योतमान, हृदयों को निर्मल करके दीप्त करनेवाले! **सूर्य**=निरन्तर सरणशील—सभी को कार्यों में प्रवृत्त करनेवाले सूर्य! **त्वा**=तुझे **सप्त हरितः**=सात रंगोंवाली रसहरणशील किरणें **रथे**=रथ में **वहन्ति**=धारण करती हैं, आगे ले-चलती हैं। २. तुझे ये आगे ले-चलती है जो तू **शोचिष्केशम्**=देदीप्यमान किरणरूप केशोंवाला है, **विचक्षणम्**=विशिष्ट प्रकाशवाला है अथवा सबके मस्तिष्कों को ज्ञानज्योति से प्रकाशित करनेवाला है।

भावार्थ—सूर्य सप्ताश्व है, सात रंगोंवाली सात किरणों से हमारे अन्दर सात प्राणदायी तत्त्वों को प्रविष्ट करके यह सूर्य हमारे रोगों का हरण करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री**॥

सूर्य-चङ्क्रमण

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः॥ २४॥

१. **सूरः**=सूर्य **रथस्य नप्त्यः**=हमारे शरीररूप रथों को न गिरने देनेवाली **सप्त**=सात **शुन्ध्युवः**=शोधक किरणों को **अयुक्त**=रथ में जोतता है। सूर्य की किरणें सात रंगों के भेद से सात प्रकार की हैं। ये हमारे शरीरों में प्राणशक्ति का संचार करके हमारे शरीरों का शोधन करती हैं और उन शरीरों को गिरने नहीं देतीं। २. यह सूर्य **ताभिः**=उन **स्वयुक्तिभिः**=अपने रथ में जुती हुई किरणरूप अश्वों के साथ **याति**=अन्तरिक्ष में आगे-और-आगे चलता है।

भावार्थ—सूर्य अपनी सात वर्णों की किरणों के साथ आगे-और-आगे बढ़ रहा है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यास्तारपङ्क्तिः**॥

मोक्ष से पुनरावृत्ति

रोहितो दिवमारुहत्तपसा तपस्वी।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव॥ २५॥

१. **रोहितः**=प्रभु की उपासना से अपना वर्धन करनेवाला **तपस्वी**=तपोमय जीवनवाला साधक **तपसा**=तप के द्वारा **दिवं आरुहत्**=प्रकाशमय ब्रह्मलोक में—मोक्ष में आरोहरण करता है। मोक्षप्राप्ति के लिए तपस्या अत्यन्त आवश्यक है। भोगप्रधान जीवन के साथ मोक्ष का सम्बन्ध नहीं है। **सः**=वह तपस्वी **योनिम् आ एति**=अपने घर (ब्रह्मलोक) को सब प्रकार से प्राप्त होता है। इस घर में परान्तकाल तक निवास करके **सः**=वह **उ**=निश्चय से **पुनः जायते**=पुनः जन्म लेता है, शरीरधारण करके इस लोक में आता है। २. **सः**=वह **देवानां अधिपतिः बभूव**=दिव्यगुणों का स्वामी होता है। यह मोक्ष से लौटनेवाला व्यक्ति उत्तम दिव्यगुणसम्पन्न जीवनवाला होता है। स्वर्गच्युत व्यक्तियों के जीवन में 'दान-प्रसंग, मधुरवाणी, देवार्चन तथा ब्राह्मण-तर्पण' आदि उत्तम गुणों की स्थिति होती है। **स्वर्गच्युतानामिह भूमिलोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे। दानप्रसङ्गो मधुरा च वाणी सुरार्चनं ब्रह्म तर्पणं च॥**

भावार्थ—हम तपस्या के द्वारा उन्नत होते हुए मोक्ष प्राप्त करते हैं। परान्तकाल के पश्चात् पुनः यहाँ जन्म लेते हैं। उस समय हमारी वृत्ति दिव्यगुणसम्पन्न होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**पुरोद्व्यतिजागताभुरिग्जगती**॥

'विश्वतोमुख' प्रभु

यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन्देव एकः॥ २६॥

१. **यः**=जो प्रभु **विश्वचर्षणिः**=सर्वद्रष्टा, **उत**=और **विश्वतोमुखः**=सब ओर मुखवाले हैं **यः**=जो **विश्वतः पाणिः**=सब ओर हाथोंवाले हैं, **उत**=और **विश्वतस्पृथः**=सब ओर पूरण (व्याप्ति)-वाले हैं (पृ पालनपूरणयोः), २. वे प्रभु **बाहुभ्यां भरति**=बाहुओं से द्युलोक को सम्यक् भृत करते हैं और **पतत्रैः**=पतनशील इन पाँवों से पृथिवीलोक को भृत कर रहे हैं, वे **एकः देवः**=अद्वितीय प्रभु **द्यावापृथिवी जनयन्**=द्युलोक व पृथिवीलोक को प्रादुर्भूत कर रहे हैं।

भावार्थ—वे प्रभु सर्वद्रष्टा व सर्वव्यापक हैं। प्रभु सर्वत्र सब इन्द्रियों के गुणों के आभासवाले हैं। वे प्रभु ही द्यावापृथिवी का प्रादुर्भाव व धारण करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

एकपाद्, द्विपाद्, त्रिपाद्, षट्पाद्

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्ये ∫ ति पश्चात्।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते॥ २७॥

१. **एकपात्**=वायु (वायुरेकपात् तस्य आकाशं पादः—गो०पू० २.८) **द्विपदः**=चन्द्र से (चन्द्रमा द्विपात् तस्य पूर्वपक्षा परपक्षौ पादौ—गो०पू० २.८) **भूयः विचक्रमे**=अधिक विक्रम व गतिवाला है। **द्विपात्**=चन्द्र **त्रिपादम्**=(आदित्यस्त्रिपात् तस्येमे लोकाः पादः—गो०पू० २.८) सूर्य को **पश्चात् अभि एति**=राशिसंक्रमण में पीछे से जा पकड़ता है। २. **द्विपात् ह**=निश्चय से यह चन्द्र **षट्पदः**=(अग्निः षट्पास्तस्य पृथिव्यान्तरिक्षं द्यौः एष ओषधिवनस्पतय इमानि भूतानि पादाः—गो०पू० २.९) अग्नि से भी **भूयः विचक्रमे**=अधिक विक्रमवाला है, चन्द्रमा से किये जा रहे रस-संचार को ओषधि-वनस्पतियों में होता हुआ भी अग्नि शुष्क नहीं कर पाता। अग्नि की उपस्थिति में चन्द्रमा उनमें रस का संचार करने में समर्थ होता है। **ते**=वे सब चन्द्र, सूर्य, अग्नि (द्विपात्, त्रिपात् व षट्पात्) **एकपदः तन्वं समासते**=वायु के शरीर में सम्यक् आसीन होते हैं। (वायोरग्निः) वायु से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है। यह अग्नि ही द्युलोक में सूर्यरूप में है तथा उसी की एक किरण अन्तरिक्ष में चन्द्रमारूप से। एवं, यह 'सूर्य, चन्द्र, अग्नि' वायु के ही शरीर में स्थित हैं।

भावार्थ—एक ज्ञानी पुरुष ब्रह्माण्ड में 'एकपात् (वायु), द्विपात् (चन्द्र), त्रिपात् (आदित्य) व षटपात् (अग्नि)' के कार्यक्रम को देखता हुआ प्रभु की महिमा का अनुभव करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अतन्द्रः यास्यन्

अतन्द्रो यास्यन्हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि॥ २८॥

१. हे **आदित्य**=किरणों द्वारा जलों का आदान करनेवाले सूर्य! **यदा**=जब **अतन्द्रः यास्यन्**=तन्द्रा से रहित होकर गति की इच्छावाले आप **हरितः आस्थात्**=इन किरणरूप अश्वों पर अधिष्ठित होते हो तब **रोचमानः**=देदीप्यमान होते हुए आप **द्वे रूपे कृणुते**=दिन व रात्रि के दो रूपों को प्रकट करते हो। २. **केतुमान्**=प्रकाश की किरणोंवाले **उद्यन्**=उदय होते हुए **विश्वा एनांसि सहमानः**=(रजस् Gloom, darkness) सब अन्धकारों को कुचलते हुए आप **प्रवतः विभासि**=(Delight, elevation) सब उच्च स्थानों को दीप्त करनेवाले होते हैं। उदय होते हुए सूर्य का प्रकाश सर्वप्रथम पर्वत शिखरादि उच्च स्थानों को ही प्रकाशमय करता है।

भावार्थ—सूर्य में तन्द्रा का नितान्त अभाव है। यह प्रकाशमय किरणों का अधिष्ठाता है। दिन व रात्रि का निर्माण करता हुआ यह उदित होता है तो अन्धकार का पराभव करके प्रारम्भ में ही शिखरों को दीप्त करनेवाला होता है। सूर्य की भाँति हमें भी तन्द्राशून्य गतिवाला बनना है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**बार्हतगर्भानुष्टुप्**॥

महान्

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि॥ २९॥

१. हे **सूर्य**=निरन्तर गतिशील (सरति) व सबको कार्य में प्रेरित करनेवाले (सुवति कर्मणि) सूर्य! तू **बट्**=सचमुच ही महान् **असि**=महान् है, महनीय है। हे **आदित्य**=किरणों द्वारा जलों का आदान करनेवाले आदित्य! तू **बट्**=सचमुच **महान्**=महनीय है—प्रभु की महिमा का तुझमें प्रकाश हो रहा है (तेजसां रविरंशुमान्)। तू तेजस्वी पदार्थों में प्रभु की विभूति ही है। २. **महतः ते**=महनीय तेरी **महिमा महान्**=महिमा महान् है। हे **आदित्य**=आदान करनेवाले सूर्य! उदय होते ही समन्तात् कृमियों का छेदन-भेदन (दाप् लवणे) करनेवाले सूर्य! (उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्ति)। **त्वं महान् असि**=तू महान् है।

भावार्थ—हम सूर्य की भाँति निरन्तर सरणशील, गतिशील, कर्त्तव्यकर्म-तत्पर बनकर तथा अच्छाइयों का आदान करते हुए (आदानात्) व बुराइयों का छेदन-भेदन करते हुए 'सूर्य व आदित्य' बनें और इसप्रकार महनीय जीवनवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदोष्णिग्बृहतीगर्भाऽतिजगती**॥

देवः, महिषः, स्वर्जित्

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः।
उभा समुद्रौ रुच्या व्या ∫ पिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित्॥ ३०॥

१. हे **पतङ्ग**=(पत गतौ, ऐश्वर्य च) ऐश्वर्य के साथ गतिवाले प्रभो! आप **दिवि रोचसे**=द्युलोक में दीप्त होते हो—द्युलोक में सूर्य के रूप में आपकी महिमा का प्रकाश होता है। **अन्तरिक्षे रोचसे**=अन्तरिक्ष में आप दीप्त होते हैं—'चन्द्र, विद्युत्, वायु' आदि देवों में आपकी महिमा का प्रकाश है। **पृथिव्यां रोचसे**=पृथिवीस्थ अग्नि आदि देवों में भी आपकी ही दीप्ति दीप्त हो रही है। (तेजसवास्मि विभावसौ)। **अप्सु अन्तः रोचसे**=जलों के अन्दर भी आप ही दीप्त हो रहे हैं। 'अप्सु' का अर्थ 'प्रजाओं' में यह भी है—सब प्रजाओं में प्रभु का ही प्रकाश दिखता है। २. **उभा समुद्रौ**=पृथिवीस्थ समुद्रों को तथा अन्तरिक्षस्थ 'मेघरूप' समुद्रों को **रुच्या व्यापिथ**=दीप्ति से आप व्याप्त कर रहे हो। हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **देवः असि**=आप सचमुच देव हैं। **महिषः**=पूजनीय हैं—पूजा के योग्य हैं। **स्वर्जित्**=हमारे लिए प्रकाश व सुख का विजय करनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का प्रकाश व महिमा सर्वत्र दीप्त है। हमारे हृदयों में भी प्रभु दीप्त हो रहे हैं। प्रभुस्मरण करते हुए हम 'देव' बनें। दैवीवृत्तिवाले बनकर महनीय जीवनवाले हों। इसप्रकार प्रकाशमय लोक का विजय करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'आशु, विपश्चित्' प्रभु

अर्वाङ् परस्तात्प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित्पतयन्पतङ्गः।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन्प्र केतुना सहते विश्वमेजत्॥ ३१॥

१. वे प्रभु **अर्वाङ् परस्तात्**=समीप-से-समीप होते हुए दूर-से-दूर हैं (तद्दूरे तद्वन्तिके)। **व्यध्वे प्रयतः**=इस विस्तृत मार्ग में सर्वत्र फैले हुए हैं—सर्वव्यापक हैं। **आशुः**=सर्वत्र व्याप्तिवाले **पतयन्**=सारे ब्रह्माण्ड के ऐश्वर्यवाले होते हुए वे प्रभु **विपश्चित्**=ज्ञानी हैं और **पतङ्गः**=सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त हैं। २. **विष्णुः**=सर्वत्र व्याप्त वे प्रभु **विचित्तः** (विशिष्टं चित्तं यस्मात्) विशिष्ट चेतना को प्राप्त करानेवाले हैं। **शवसा**=अपने बल से **अधितिष्ठन्**=सम्पूर्ण संसार के अधिष्ठाता होते हुए प्रभु **एजत् विश्वम्**=गति करते हुए सारे ब्रह्माण्ड को **केतुना**=अपने ज्ञान से **प्रसहते**=(bear,

support, bearup) धारण करते हैं।

भावार्थ—दूर-से-दूर व समीप-से-समीप वर्तमान वे प्रभु ही सारे ब्रह्माण्ड के ईश्वर हैं। वे सर्वत्र व्याप्त, सर्वज्ञ प्रभु ही इसका धारण कर रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अद्भुत ज्ञानी, पूज्य, पालक' प्रभु

चित्रश्चिकित्वान्महिषः सुपर्ण आरोचयन्रोदसी अन्तरिक्षम्।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्या ∫णि॥ ३२॥

१. **चित्रः**=वे प्रभु अद्भुत महिमावाले हैं, **चिकित्वान्**=ज्ञानी हैं, **महिषः**=वे पूजनीय प्रभु ही **सुपर्णः**=उत्तमता से पालन करनेवाले हैं। वे ही **रोदसी**=द्यावापृथिवी को तथा **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्ष को **आरोचयन्**=दीप्त कर रहे हैं। २. ये **सूर्यं परिवसाने**=सूर्य को सब ओर से धारण करते हुए (ओढ़े हुए) **अहोरात्रे**=दिन और रात **अस्य**=इस प्रभु के **विश्वा वीर्याणि**=सब वीर कर्मों को **प्रतिरतः**=बढ़ा रहे हैं—प्रभु के वीरता पूर्ण कर्मों की महिमा को प्रकट करते हैं।

भावार्थ—वे 'अद्भुत ज्ञानी, पूज्य, पालक' प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं। सूर्य की गति से निर्मित ये दिन व रात प्रभु की महिमा का ही प्रकाश कर रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'शक्ति व ज्योति' के धाता प्रभु

तिग्मो विभ्राजन्तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः।
ज्योतिष्मान्पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात्प्रदिशः कल्पमानः॥ ३३॥

१. वे प्रभु **तिगमः**=शत्रुओं के लिए अति तीक्ष्ण व **विभ्राजन्**=विशिष्ट दीप्तिवाले हैं। **तन्वं शिशानः**=अपने शरीर को अत्यन्त तीक्ष्ण बनानेवाले हैं—जो भी व्यक्ति अपने को प्रभु का शरीर बनाता है, अर्थात् प्रभु को अपने अन्दर बिठाता है, हृदय में प्रभु का ध्यान करता है, प्रभु उसकी शक्तियों को बढ़ाते हैं। **अरंगमासः प्रवतः रराणः**=(अरं=शक्ति, प्रवतः Heights) शक्ति व उत्कर्षों को प्राप्त करानेवाले हैं। २. **ज्योतिषमान्**=वे प्रभु ज्योर्तिमय हैं, प्रकाशस्वरूप हैं। **पक्षी**=(पक्ष परिग्रहे) साधनों का परिग्रह करनेवाले हैं। **महिषः**=वे पूज्य प्रभु **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाले हैं। **विश्वाः प्रदिशः**=सब प्रकृष्ट (विस्तृत) दिशाओं को **कल्पमानः**=शक्तिशाली बनाते हुए **आस्थात्**=समन्तात् स्थित हैं। सब दिशाओं में स्थित प्राणियों को प्रभु ही शक्ति प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु को जो भी धारण करता है, प्रभु उसे शक्ति व ज्योति प्राप्त कराते हैं। प्रभु हमें शक्तिप्रापक उत्कर्षों की ओर ले-चलते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः**॥

देवानाम् 'केतुः+अनीकम्'

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः॥ ३४॥

१. वे प्रभु **देवानाम्**=सूर्यादि सब देवों के **केतुः**=प्रकाशक हैं, **चित्रं अनीकम्**=उनका बल अद्भुत है, सब देवों को प्रकाश और शक्ति प्राप्त करानेवाले प्रभु ही हैं। **ज्योतिष्मान्**=ज्योर्तिमय हैं। **प्रदिशः**=इन प्रकृष्ट दिशाओं में **सूर्यः उद्यन्**=सूर्यरूपेण उदित होते हुए वे प्रभु **दिवाकरः**=दिन

व प्रकाश करनेवाले हैं। २. वे **शुक्रः**=पवित्र व दीप्त प्रभु **द्युभ्नैः**=ज्ञान-ज्योतियों से **विश्वा तमांसि**=सब अज्ञानान्धकारों को **अति अतारीत्**=पार करनेवाले हैं—अविद्या-अन्धकार को नष्ट करके प्रकाश प्राप्त करानेवाले हैं। अविद्या-अन्धकार को दूर करके **दुरितानि**=सब दुरितों को भी वे प्रभु दूर करनेवाले हैं।

भावार्थ—सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभु ज्योतिष्मान् हैं। वे हमारे अविद्या-अन्धकार को दूर करके हमें सब दुरितों से पार ले-जाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'मित्र, वरुण और अग्नि' के चक्षु

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ ३५॥

१. **देवानाम्**=सूर्यादि प्रकाशमान पिण्डों का **चित्रं अनीकम्**=अद्भुत बलस्वरूप वह प्रभु **उत् अगात्**=उदित हुआ है। इन सूर्यादि पिण्डों में प्रभु का प्रकाश ही दीप्त हो रहा है। वे प्रभु **मित्रस्य**=सूर्य के **वरुणस्य**=चन्द्र के तथा **अग्नेः**=अग्नि के **चक्षुः**=प्रकाशक हैं। २. वे प्रभु **द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्**=द्युलोक, पृथिवीलोक तथा अन्तरिक्षलोक का **आ अप्रात्**=समन्तात् पूरण किये हुए हैं—प्रभु इन सब लोकों में व्याप्त हैं। **सूर्यः**=वे प्रभु सूर्य हैं—सूर्यसम् देदीप्यमान हैं। **जगतः तस्थुषः च**=जंगम व स्थावर के आत्मा हैं—इन सबके अन्दर व्याप्त होकर रह रहे हैं।

भावार्थ—वे प्रभु देवों के अद्भुत बल हैं। सूर्य, चन्द्र व अग्नि के प्रकाशक हैं, त्रिलोकी को व्याप्त किये हुए हैं और जंगम व स्थावर जगत् के आत्मा हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यम् अविन्दत् अत्रिः

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः॥ ३६॥

१. **उच्चा पतन्तम्**=सर्वोच्च स्थिति में परमैश्वर्यवान् होते हुए (पत् गतौ ऐश्वर्ये च) **अरुणम्**=तेजस्वी व प्रकाशमान **सुपर्णम्**=उत्तमता से सबका पालन करनेवाले **दिवः मध्ये तरणिम्**=ज्ञान के मध्य में तारनेवाले, अर्थात् ज्ञान देकर सब दुरितों से पार करनेवाले, **भ्राजमानम्**=दीप्त **सवितारम्**=सबके उत्पादक व प्रेरक **त्वा**=आपको हे प्रभो! **पश्याम**=देखें। उन आपको देखें, **यम्**=जिनको **अजस्रं ज्योतिः आहुः**='न क्षीण होनेवाली निरन्तर ज्योति', इस रूप में कहते हैं। **यत्**=इस ज्योति को **अत्रिः**=त्रिगुणातीत (नित्य सत्त्वस्थ) पुरुष **अविन्दत्**=प्राप्त करता है। उस प्रभु का दर्शन अत्रि करता है।

भावार्थ—प्रभु 'परमेश्वर हैं, तेजस्वी हैं, सबका पालन करनेवाले हैं'। ज्ञान द्वारा दुरितों से दूर करनेवाले, दीप्त व प्रेरक हैं। ये प्रभु सदा प्रकाशमय हैं, त्रिगुणातीत पुरुष ही प्रभु को पाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाविराड्गर्भाजगती**॥

'अदिति-पुत्र' प्रभु

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम॥ ३७॥

१. **दिवः पृष्ठे**=ज्ञान के आधार में **धावमानम्**=हम सबके जीवनों को शुद्ध करते हुए (धाव् शुद्धौ) **सुपर्णम्**=उत्तमता से हमारा पालन करते हुए **अदित्याः पुत्रम्**=वेदवाणी के द्वारा (अ-दिति=अखण्डिता वाक्) हमें पवित्र व रक्षित करनेवाले (पुनाति, त्रायते) प्रभु को **भीतः**=संसार के इन काम-क्रोधरूप शत्रुओं से भयभीत हुआ-हुआ मैं **नाथकामः**=नाथ को, रक्षक को चाहता हुआ **उपयामि**=समीपता से प्राप्त होता हूँ। २. हे **सूर्य**=उत्तम कर्मों में प्रेरित करनेवाले प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **दीर्घम् आयुः**=दीर्घजीवन को **प्रतिर**=अत्यन्त बढ़ानेवाले होओ। **मा रिषाम**=हम हिंसित न हों। **ते सुमतौ स्याम**=सदा आपकी कल्याणी मति में निवास करें।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान द्वारा हमारा शोधन करते हैं। प्रभु की कल्याणी मति में चलते हुए हम दीर्घ आयुष्य को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सहस्र युगपर्यन्त दिन व रात

सहस्राक्षꣳ वियतावस्य पक्षौ हरेर्हꣳसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा॥ ३८॥

१. **स्वर्गं पततः**=सदा आनन्दमय लोक में गति करनेवाले—सदा आनन्दस्वरूप **हंसस्य**=हमारे पापों का नाश करनेवाले और पापनाश के द्वारा **हरेः**=दुःखों का हरण करनेवाले **अस्य**=इस प्रभु के **पक्षौ**=सृष्टि-निर्माण व प्रलयरूप दो पक्ष (दिन व रात) **सहस्राक्षꣳ वियतौ**=सहस्र युगपर्यन्त परिमाणवाले दिन व रात में फैले हुए हैं—या विशिष्टरूप से नियमबद्ध हैं। (सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः)। २. **सः**=वे प्रभु **सर्वान् देवान्**=सब पृथिवीस्थ, अन्तरिक्षस्थ व द्युलोकस्थ ग्यारह-ग्यारह कुल तेतीस देवों को **उरसि उपदद्य**=अपने हृदय में, अपने एक देश में ग्रहण करके **विश्वा भुवनानि**=सब लोकों को **सम्पश्यन् याति**=सम्यक् देखते हुए—सबका सम्यक् धारण करते हुए **याति**=गति करते हैं।

भावार्थ—सदा आनन्दमयलोक में निवास करनेवाले, पापनाशक, दुःखनिवारक प्रभु के सृष्टिनिर्माण व प्रलयरूप दिन व रात नियमबद्ध रूप से सहस्र युगों के परिमाणवाले हैं। वे प्रभु सब देवों को अपने अन्दर धारण करके सब लोकों को देखते हुए गति करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'काल व प्रजापति' प्रभु

रोहितः कालो अभवद्रोहितोऽग्रे प्रजापतिः।
रोहितो यज्ञानां मुखꣳ रोहितः स्वराभरत्॥ ३९॥

१. **रोहितः**=सदा से वृद्ध वे प्रभु ही **कालः अभवत्**=काल हैं 'दिक्कालाकाशः न परमात्मनो व्यतिरिचयन्ते', भूत, भविष्यत्, वर्तमानरूप कालत्रयी के स्वामी वे प्रभु ही हैं। **रोहितः**=सदा से वृद्ध वे प्रभु ही **अग्रे प्रजापतिः**=सबसे आगे, सर्वमुख्य प्रजापति हैं, प्रजाओं के रक्षक हैं। २. **रोहितः**=ये रोहित प्रभु ही **यज्ञानां मुखम्**=वेद द्वारा सब यज्ञों का प्रतिपादन करनेवाले हैं और **रोहितः**=ये रोहित प्रभु इन यज्ञों द्वारा **स्वः आभरत्**=सुख व आनन्द का भरण करनेवाले हैं।

भावार्थ—सदा से वृद्ध वे प्रभु ही काल हैं, प्रजापति हैं, यज्ञों के प्रतिपादक व सुखों के पोषक हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रकाशक प्रभु

रोहितो लोको अभवद्रोहितोऽत्यतपद्दिवम्।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत्॥ ४०॥

१. **रोहितः**=वे सदा से वृद्ध **लोकः अभवत्**=लोक हैं, प्रकाश हैं। **रोहितः**=ये रोहित प्रभु ही **दिवं अति अतपत्**=द्युलोकस्थ सूर्य को अतिशेयन दीप्त करते हैं। प्रभु की दीप्ति से ही सूर्य दीप्त है। २. **रोहितः**=वे सदावृद्ध प्रभु ही **रश्मिभिः**=अपनी प्रकाश की किरणों से **भूमिं समुद्रम्**=इस भूमि व अन्तरिक्ष का **अनु संचरत्**=लक्ष्य करके गति करनेवाले होते हैं। प्रभु ही सब सूर्यचक्र व नक्षत्रों को प्रकाश प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही लोक हैं। वे रोहित प्रभु ही सूर्यादि को दीप्त कर रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'व्यापक, अधिपति, रक्षक' प्रभु

सर्वा दिशः समचरद्रोहितोऽधिपतिर्दिवः। दिवं समुद्रमाद्भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति॥ ४१॥

१. **रोहितः**=वे तेजस्वी सदावृद्ध प्रभु **दिवः अधिपतिः**=सम्पूर्ण ज्ञान व प्रकाश के स्वामी हैं। जहाँ-जहाँ देवत्व है, प्रकाश है वह सब उस प्रभु का ही है। ये प्रभु **सर्वाः दिशः समचरत्**=सब दिशाओं में संचार करते हैं—सर्वत्र व्याप्त हैं। २. ये प्रभु **दिवम्**=द्युलोक को **समुद्रम्**=अन्तरिक्षलोक को **आत्**=और **भूमिम्**=इस पृथिवी को, **सर्वं भूतम्**=सब प्राणियों को **विरक्षति**=रक्षित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं, प्रकाश के अधिपति हैं, सबका रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'शुक्रः, अतन्द्रः' प्रभु

आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः।
चित्रश्चिकित्वान्महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद्विभाति॥ ४२॥

१. **बृहती आरोहन्**=इन विशाल दिशाओं में आरोहण करता हुआ, **शुक्रः**=ज्ञानदीप्त, **अतन्द्रः**=आलस्यशून्य **रोचमनः**=तेजस्विता से दीप्त प्रभु **द्वे रूपे कृणुते**=जंगम व स्थावर—दो रूपोंवाले संसार को बनाता है। २. **चित्रः**=वे प्रभु अद्भुत हैं, **चिकित्वान्**=ज्ञानी हैं, **महिषः**=पूजनीय हैं। **वातमायाः**=वायु में भी व्याप्तिवाले हैं। **यावतः लोकान् अभि**=जितने भी लोक हैं, उनका लक्ष्य करके वे प्रभु **यत् विभाति**=जब दीप्त होते हैं तब सचमुच ही पूजनीय होते हैं।

भावार्थ—वे सर्वत्र व्याप्त प्रभु दीप्त व आलस्यशून्य हैं। वे ही सब लोकों में दीप्ति प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'गातुवित्' प्रभु

अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः॥ ४३॥

१. **अन्यत् अभि एति**=एक हमारी ओर आता है, **अन्यत् परि अस्यते**=दूसरा हमसे परे फेंका जाता है। दिन आता है तो रात्रि परे फेंकी जाती है। रात्रि आती है तो दिन परे फेंका

जाता है। इसप्रकार **अहोरात्राभ्याम्**=दिन और रात्रि के द्वारा **महिषः**=वह पूजनीय प्रभु **कल्पमानः**=हमारे आयुष्यों को काट रहे हैं। दिन और रात्रि एक क्रम में आते हैं और हमारे आयुष्य को जीर्ण करते चलते हैं। २. उस **सूर्यम्**=सूर्यसम ज्योति ब्रह्म को **रजसि क्षियन्तम्**=सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में निवास करनेवाले, **गातुविदम्**=हमारे लिए मार्ग का ज्ञापन करनेवाले को, **वयम्**=हम **नाधमानाः हवामहे**=प्रार्थना करते हुए पुकारते हैं। प्रभु ही मार्गदर्शन करते हुए हमें पापों से बचाते हैं और इस प्रकार हमारा कल्याण करते हैं।

भावार्थ—दिन व रात्रि के निर्माण द्वारा हमारे आयुष्य का यापन होता चलता है। वे प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं, हमें मार्ग दिखा रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**चतुष्पदापुरःशाक्वराभुरिग्जगती**॥

'सुविदत्रो यज्ञत्रः' प्रभु

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि॥ ४४॥

१. **पृथिवीप्रः**=इस पृथिवी को विविध ओषधि-वनस्पतियों से पूरण करनेवाले **महिषः**=पूजनीय **नाधमानस्य गातुः**=प्रार्थना करनेवाले के मार्गदर्शक **अदब्धचक्षुः**=अहिंसित दृष्टिवाले, सर्वद्रष्टा वे प्रभु **विश्वं परिबभूव**=सारे विश्व को व्याप्त किये हुए हैं। २. **विश्वं संपश्यन्**=सारे संसार का सम्यक् निरीक्षण व धारण करते हुए वे प्रभु **सुविदत्रः**=सब उत्तम वस्तुओं के प्रापण (विद् लाभे) के द्वारा हमारा त्राण करनेवाले हैं। **यजत्रः**=वे प्रभु पूजनीय हैं, संगतिकरण-योग्य हैं और समर्पणीय हैं। प्रभु के प्रति हमें अपना अर्पण कर देना चाहिए। वे प्रभु **यद् अहं ब्रवीमि**=जो मैं प्रार्थना के रूप में कहता हूँ, **इदं शृणोतु**=इस बात को सुनें। मेरी प्रार्थना को सुनने की प्रभु कृपा करें। वस्तुतः मैं इस योग्य बनूँ कि मेरी प्रार्थना सुनी जाए।

भावार्थ—वे प्रभु इस पृथिवी को हमारे पालन के लिए सब आवश्यक वस्तुओं से परिपूरित करते हैं। सर्वत्र व्याप्त वे प्रभु हम सबका ध्यान करते हैं। वे 'सुविदत्र' हैं, हमारी प्रार्थना को सुनते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अतिजागतगर्भाजगती**॥

पृथिवीं, समुद्रं, द्यां, अन्तरिक्षं (परिबभूव)

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन्परि द्यामन्तरिक्षम्।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि॥ ४५॥

१. **अस्य**=उस प्रभु की **महिमा**=महिमा **पृथिवीम् समुद्रं परि** (बभूव)=पृथिवी और समुद्र को व्याप्त कर रही है। **ज्योतिषः विभ्राजन्**=ज्योति से दीप्त होते हुए वे प्रभु **द्याम् अन्तरिक्षम्**=द्युलोक व अन्तरिक्षलोक को **परि (बभूव)**=व्याप्त किये हुए हैं। २. **सर्वं संपश्यन्**=सबको सम्यक् देखते हुए वे प्रभु **सुविदत्रः**=सब उत्तम वस्तुओं के प्रापण के द्वारा हमारा त्राण करनेवाले हैं। **यज्ञत्रः**=वे प्रभु पूजनीय हैं, संगतिकरण-योग्य हैं और समर्पणीय हैं। **यत् अहं ब्रवीमि**=जो भी मैं प्रार्थना के रूप में प्रभु से कहता हूँ, प्रभु **इदं शृणोतु**=उसको सुनें। मेरी प्रार्थना न सुनने योग्य न हो। मैं अपने को प्रार्थना सुने जाने का पात्र बनाऊँ।

भावार्थ—प्रभु की महिमा 'पृथिवी, समुद्र, द्युलोक व अन्तरिक्षलोक' में सर्वत्र विद्यमान है। वे प्रभु हम सबका ध्यान करते हैं। मैं इस योग्य बनूँ कि वे 'सुविदत्र, यज्ञत्र' प्रभु मेरी

प्रार्थना को सुनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आश्रम चतुष्टय

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ॥ ४६॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जब प्रभु हमारी प्रार्थना को सुनते हैं तब ब्रह्मचर्याश्रम में **समिधा**='पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' के पदार्थों के ज्ञान द्वारा (इन्ध् दीप्तौ) **अग्निः अबोधि**=ज्ञानाग्नि दीप्त की जाती है। ब्रह्मचारी आचार्य द्वारा ज्ञानसमिद्ध किया जाता है। ये ब्रह्मचारी स्नातक बनकर (स स्नातः बभ्रुः०) जब गृहस्थ बनता है तब **प्रति आयतीं उषासम्**=प्रत्येक आनेवाले ऊषाकाल में **जनानां धेनुं इव**=लोगों के प्रति गौ की भाँति होता है। गौ जैसे-दूध देकर लोगों का पोषण करती है, यह भी सब आश्रमियों का पोषण करनेवाला होता है। २. जैसे **यह्वाः**=तनिक बड़े होकर **पक्षी वयाम्**=शाखा को **प्र उज्जिहानाः**=प्रकर्षेन छोड़नेवाले होते हैं—घोंसले से निकलकर जैसे वे आकाश में उड़ते हैं, उसीप्रकार ये भी गृहस्थ की समाप्ति पर घर को छोड़कर वनस्थ होने की कामनावाले होते हैं। अब वानप्रस्थ की साधना को पूर्ण करके **भानवः**=सूर्यसम ज्ञान की ज्योतिवाले वे संन्यस्त पुरुष सबके लिए प्रभु का सन्देश सुनाते हुए **नाकं अच्छ प्रसिस्रते**=मोक्षलोक की ओर आगे बढ़ते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मचारी ज्ञानदीप्त बनें, गृहस्थ सबका पालन करनेवाला हो। गृहस्थ को पूर्ण करके मनुष्य वनस्थ बनें। साधना के द्वारा ज्ञानदीप्त बनकर प्रभु का सन्देश सबको सुनाता हुआ मोक्ष की ओर प्रगतिवाला हो।

अथ तृतीयोऽनुवाकः

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाऽऽकृतिः**॥

ब्रह्महत्यारूप पाप

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन्क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १॥

१. **यः**=जो प्रभु **इमे द्यावापृथिवी जजान**=इन द्युलोक व पृथिवीलोक को उत्पन्न करता है, **यः**=जो प्रभु **द्रापिं कृत्वा**=अपने को कवच बनाकर **भुवनानि वस्ते**=सब भुवनों को आच्छादित करते हैं, अर्थात् जिस प्रभु ने सारे भुवनों को आच्छादित करके उनका रक्षण किया हुआ है, **यस्मिन्**=इस प्रभु में **षट् उर्वीः प्रदिशः**=छह विस्तृत दिशाएँ **क्षियन्ति**=निवास करती है, **याः**=जिन दिशाओं को **पतङ्गः**=यह सूर्य **अनुविचाकशीति**=अनुकूलता से प्रकाशित करता है, २. **तस्य**=उस **देवस्य क्रुद्धस्य एतत् आगः**=उस क्रुद्ध देव प्रभु के प्रति यह अपराध है, **यः**=जो **एवं विद्वांसम्**=इसप्रकार ज्ञानी **ब्राह्मणं जिनाति**=ब्राह्मण को हिंसित करता है। उस ब्रह्मवेता का हिंसन ब्रह्म का हिंसन है। इसप्रकार ज्ञान की हत्या होती है। हे **रोहित**=सदा से प्रवृद्ध प्रभो! इस ब्रह्मज्य को आप **उत् वेपय**=कम्पित कर दीजिए, **प्रक्षिणीहि**=इसे हिंसित कीजिए। इस **ब्रह्मज्यस्य**=ज्ञान की हानि करनेवाले के **पाशान् प्रतिमुञ्च**=पाशों को जकड़ दीजिए। प्रभु की व्यवस्था से हमारे

समाज से इस ब्रह्मज्य का निराकरण हो जाए, जिससे ज्ञानवृद्धि होकर राष्ट्र ठीक दिशा में आगे बढ़े।

भावार्थ—उन ब्रह्मज्ञानियों का आदर होना चाहिए जो प्रभु को इस संसार का उत्पादक व धारक जानते हैं, जो प्रभु को, सूर्य से प्रकाशित सब विस्तृत दिशाओं में, व्यापक जानते हैं। इन ब्रह्मज्ञानियों की हत्या करनेवाला प्रभु से कम्पनीय, हिंसनीय व पाशबन्धनीय हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**षट्पदाभुरिगष्टिः**॥

वाताः समुद्राः

यस्माद्वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात्समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ २॥

१. **यस्मात्**=जिस प्रभु की व्यवस्था से **वाताः**=वायुएँ **ऋतुथा पवन्ते**=ऋतुओं के अनुसार यथोचितरूप में बहती हैं और **यस्मात्**=जिस प्रभु की व्यवस्था से **समुद्राः**=समुद्र **अधिविक्षरन्ति**=विविध दिशाओं में क्षरित होते हैं। क्षारयुक्त जलवाले होते हैं, उस प्रभु के प्रति यह अपराध है जो इस ब्रह्मज्ञानी को हिंसित करता है। शेष पर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु की व्यवस्था से ही उस-उस ऋतु में यथोचित वायुओं के प्रवाह चलते हैं, उसकी व्यवस्था से ही सब दिशाओं में समुद्रों के प्रवाह क्षरित हो रहे हैं। इस ब्रह्म को जाननेवाले का निरादर न करके उसके द्वारा राष्ट्र में ज्ञानवृद्धि करना ही उचित है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**३ षट्पदाऽष्टिः,**
४ षट्पदाऽतिशाक्वरगर्भाधृतिः॥

मारयति प्राणयति

यो मारयति प्राणयति यस्मात्प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ३॥
यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ४॥

१. **यः**=जो प्रभु **मारयति**=सबको मृत्यु प्राप्त कराता है तथा **प्राणयति**=प्राणित करता है, अर्थात् जो सब प्राणियों की मृत्यु और जन्म का कर्त्ता है। **यस्मात्**=जिससे **विश्वा भुवनानि**=सब लोक **प्राणन्ति**=प्राण धारण करते हैं। २. **यः**=जो **प्राणेन**=प्राण के द्वारा **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक को—तत्रस्थ प्राणियों को **तर्पयति**=प्रीणित करता है तथा **अपानेन**=अपान के द्वारा दोषों को दूर करनेवाली इस अपानशक्ति के द्वारा **यः**=जो **समुद्रस्य**='पुरुषो वै समुद्रः' (जै०उ० ३.३५.५)। आनन्दमय जीवनवाले पुरुष के (स+मुद्) जठरं **पिपर्ति**=जठर को पालित व पूरित करता है, उस प्रभु के प्रति यह अपराध है कि इस ब्रह्म के ज्ञानी की हत्या करके ज्ञान-प्रसार के कार्य में रुकावट उत्पन्न करना। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु ही सबको जन्म-मृत्यु प्राप्त कराते हैं, प्रभु के आधार से सब लोक प्राणित हो रहे हैं। प्रभु ही प्राणशक्ति के द्वारा हमारा प्रीणन करते हैं और अपान द्वारा दोष-निवारणपूर्वक

जीवन को आनन्दमय बनाते हैं। इस ज्ञान के प्रसार करनेवाले की हत्या पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥
छन्दः—**सप्तपदाशाक्वरातिशाक्वरगर्भाप्रकृतिः**॥

'विराट्' आदि का आधार 'प्रभु'

यस्मिन्विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ५॥

१. **यस्मिन्**=जिस प्रभु में विराट् (इयं पृथिवी विराट्—गो०उ० ६.२) यह पृथिवी, **परमेष्ठी**=(आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी ता हि परमे स्थाने तिष्ठन्ति—शत० ८.२.३.१३) प्रजा के रक्षक ये परम स्थान में विस्तृत होकर वृष्ट होनेवाले जल, **अग्निः**=अग्नि, **प्रजापतिः**=(एतद् वै प्रजापतेः प्रत्यक्षं रूपं यद् वायुः—कौ० १९.२) वायु **वैश्वनरः**=आकाश (एष वै बहुलो वैश्वनरो यदाकाशः—शत० १०.६.१.६) **पङ्क्त्या सह**=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राणों के साथ होनेवाला जीव **श्रितः**=आश्रित है। २. **परस्य प्राणम्**=परा प्रकृतिरूप जीव के प्राण को (इतरस्त्वन्यां प्रवृतिं विद्धि मे परां जीवभूताम्) तथा **परमस्य तेजः**=परम स्थान में स्थित सूर्य के तेज को **आददे**=स्वयं ग्रहण करता है। उस प्रभु के प्रति यह अपराध है कि जो ब्रह्मज्ञानी को हिंसित करता है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वह प्रभु 'पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश व जीवों' का आश्रय है। वही जीव के प्राणों व सूर्य के तेज को ग्रहण करता है। इसप्रकार के ब्रह्म के ज्ञाता का हिंसन करना पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥
छन्दः—**सप्तपदाशाक्वरातिशाक्वरगर्भाप्रकृतिः**॥

सर्वाधार प्रभु

यस्मिन्षड्उर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ६॥

१. **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **षट् उर्वीः**=ये छह विशाल **पञ्च दिशाः**=(तवेमे पञ्च पशवः गौरश्वः पुरुषोऽजावयः) पाँच पशुओं सहित दिशाएँ **अधिश्रिताः**=आश्रित हैं। इसीप्रकार **चतस्रः आपः**='ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र' रूप चारों प्रजाएँ (आपो नारा इति प्रोक्ताः), **यज्ञस्य त्रयः अक्षराः**=यज्ञ के तीनों अक्षर उस पूज्य प्रभु के वाचक तीन 'अ उ म्' रूप अक्षर (तस्य वाचकः प्रणवः, 'ओंकारप्रणवौ समौ') भी जिसमें आश्रित हैं। २. **यः**=जो ये **रोदसी अन्तरा**=इन द्यावापृथिवी के बीच में **क्रुद्धः**=पापियों के प्रति क्रुद्ध हुआ-हुआ **चक्षुषा**=सूर्यरूप आँख से **ऐक्षत**=देखता है (चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ)। उस परमात्मा के प्रति यह पाप है कि इसप्रकार के ब्रह्मज्ञानी की हत्या करना। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु ही विशाल दिशाओं को, उनमें स्थित 'गौ, अश्व, पुरुष, अजा, अवि' इन

पाँच पशुओं को, 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र' रूप चार प्रजाओं को, 'अ उ म्' इन तीनों अक्षरों को धारण करते हैं, वे ही सूर्यरूप आँख द्वारा पापियों पर क्रोधदृष्टि करते हैं। इस प्रभु के ज्ञाता ज्ञानी ब्राह्मण का आदर ही करना चाहिए, न कि हत्या।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाऽनुष्टुब्बार्भाऽतिधृतिः**॥

अन्नाद-प्रजापति-ब्रह्मणस्पति

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः। भूतो भविष्यद्भुवनस्य यस्पतिः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ७॥

१. **यः**=जो प्रभु **अन्नादः**=सब अन्नों का अदन करनेवाले हैं (अहं अन्नादः, 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवतः ओदने') **अन्नपतिः बभूव**=जो सब अन्नों के स्वामी व रक्षक हैं **उत यः ब्रह्मणस्पतिः**=और जो ज्ञान के स्वामी हैं। २. **यः**=जो **भूतः**=दूर-से-दूर भूतों में भी सदा से वर्तमान, **भविष्यत्**=भविष्यत् में भी सदा रहनेवाले ('कभी नहीं थे', यह नहीं 'कभी नहीं रहेंगे', यह भी नहीं) प्रभु हैं, **यः भुवनस्य**=जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के **पतिः**=स्वामी हैं, उस ब्रह्म के प्रति यह अपराध है कि उसप्रकार के ब्रह्मज्ञानी की हिंसा करना। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—जो ब्रह्मज्ञानी प्रभु को 'अन्नाद, अन्नपति व ब्रह्मणस्पति' रूप में देखता है और जो प्रभु को 'सदा से वर्तमान, सदा से रहनेवाला' भुवनपति जानता है उस ब्रह्मज्ञानी की हिंसा करना महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽत्यष्टिः**॥

त्रयोदशं मासं (निर्मिमीते)

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ८॥

१. **अहोरात्रैः**=दिन और रातों के **विमितम्**=विशेष रूप से परिमित, नपे हुए **त्रिंशत् अङ्गम्**=तीस अंगों से बने हुए **त्रयोदशं मासम्**=तेरहवें मास को भी **यः निर्मिमीते**=जो पूरी तरह से बना देता है उस व्यवस्थापक प्रभु के प्रति यह अपराध है कि ऐसे ब्रह्मज्ञानी की हत्या करना। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु ने इस कालचक्र का अद्भुत निर्माण किया है। समय-समय पर तेरहवाँ मास भी आता है और बड़े नियमितरूप से आता है। इस कालविद्या में निपुण ब्रह्मज्ञानी की हत्या करना महापाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाभुरिगतिधृतिः**॥

द्युलोक की ओर जाना व फिर वहाँ से लौटना

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ९॥

१. **हरयः**=जल का वाष्पीभवन द्वारा हरण करनेवाली, **सुपर्णाः**=सम्यक् पालन व पोषण

करनेवाली **अपः वसानाः**=जल को धारण करनेवाली सूर्य की किरणें **कृष्णं नियानम्**=कृष्ण वर्ण या नील वर्णवाले सबके स्थानरूप **दिवं उत पतन्ति**=द्युलोक की ओर गतिवाली होती हैं। सूर्य की किरणों के द्वारा जल का वाष्पीभवन होता है। इन वाष्पीभूत जलों को लेकर सूर्य की किरणें मानो फिर आकाश की ओर गतिवाली होती हैं। २. **ते**=वे सूर्य की किरणें **ऋतस्य सदनात्**=इस ऋत (rain-water) के सदन से—वृष्टिजल के घररूप अन्तरिक्षलोक से **आववृत्रन्**=फिर यहाँ लौटनेवाली बनती हैं। सूर्य की किरणरूप हाथों द्वारा जलवाष्पों को ऊपर ले-जाता है, सूर्य के ये किरणरूप हाथ जलों को लेने के लिए फिर इस पृथिवीलोक की ओर आवृत होते हैं। प्रभु की यह क्या विचित्र रचना है ? इस रचना में प्रभु की महिमा को देखनेवाले ब्रह्मज्ञानी की हत्या करना पाप है।

भावार्थ—सूर्य की किरणें जलों को लेकर ऊपर अन्तरिक्ष में जाती हैं। वहाँ के जलकणों को स्थापित करके पुनः जलकणों को लेने के लिए यहाँ लौटती हैं। इस प्रक्रिया में प्रभु की महिमा को देखनेवाले ब्रह्मज्ञानी का आदर करना हमारा कर्त्तव्य है। उसकी हिंसा करना महान् पाप है। (मुक्तात्मा भी द्युलोक की ओर जाता है और परान्तकाल के पश्चात् फिर वहाँ से यहाँ लौटता है)।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाभुरिगतिधृतिः**॥

सप्त सूर्याः

यत्ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद्यत्संहितं पुष्कलं चित्रभानु।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १०॥

१. हे **कश्यप**=सर्वद्रष्टा प्रभो! **यत्**=जो **ते**=आपका **चन्द्रम्**=सबको आह्लादित करनेवाला **रोचनावत्**=दीप्तियुक्त **पुष्कलम्**=पुष्टिकारी व पर्याप्त **संहितम्**=एकत्र स्थापित **चित्रभानु**=अद्भुत दीप्तिवाला प्रकाशमयस्वरूप है। यह वह स्वरूप है कि **यस्मिन्**=जिस प्रकाशमयस्वरूप में **सप्तसूर्याः**=सात रंगोंवाली किरणोंवाले ये सूर्य **साकं आर्पिताः**=साथ-साथ अर्पित हैं। २. प्रभु ने वस्तुतः इन सूर्यों को सात वर्णोंवाली किरणोंवाला बनाकर हमारे शरीरों में सात प्राणशक्तियों के स्थापन की सुन्दर व्यवस्था की है। इन सात प्राणशक्तियों से शरीरस्थ सप्तर्षि व सप्तहोता पूर्ण स्वस्थरूप से रहते हैं तभी ये साधक सातों लोकों का विभाजन करता हुआ प्रभु को प्राप्त करता है। इसप्रकार इन अद्भुत सूर्य प्रकाशों में प्रभु की महिमा के द्रष्टा ब्रह्मज्ञानी का हिंसन महापाप है।

भावार्थ—सर्वद्रष्टा प्रभु का स्वरूप आह्लादकारी और प्रकाशमय है। उसने सूर्य को सात रंगों की किरणोंवाला बनाया है। हमारे शरीर में सात प्राणशक्तियों की स्थापना की है, जिससे शरीरस्थ सप्तर्षि व सप्त होता पूर्ण स्वस्थ रहते हैं। इसप्रकार सूर्यप्रकाश में प्रभु की महिमा को देखनेवाले ब्राह्मण की हिंसा करना महापाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाभुरिगतिधृतिः**॥

अप्रमादम् सदम्

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद्रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्। ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।

उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ ११॥

१. (द्यौर्वै बृहत्—शत० ९.१.२.३७, रथन्तरं हि इयं पृथिवी—शत० १.७.२.१७) **बृहत्**=यह महान् द्युलोक **एनम्**=इस प्रभु को **पुरस्तात्**=सामने से **अनुवस्ते**=आच्छादित करता है और **रथन्तरम्**=यह पृथिवी **पश्चात्**=पीछे से **प्रतिगृह्णाति**=ग्रहण करती है। इसप्रकार **ज्योतिः**=ज्योर्तिमय प्रभु को **वसाते**=वस्त्र के समान आच्छादित करते हुए ये द्यावापृथिवी **अप्रमादम्**=प्रमादशून्य **सदम्**=गृह के समान हैं। इसप्रकार प्रभु की ज्योति को दिखलानेवाले द्यावापृथिवी को जो एक उत्तम गृह के रूप में देखता है, उस ब्रह्मज्ञानी का हनन प्रभु के प्रति एक महान् अपराध है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—द्युलोक ने प्रभु को आगे से धारण किया हुआ है, पृथिवी ने पीछे से। एवं, यह संसार-गृह प्रभु की ज्योति से परिपूर्ण है। इस रूप में संसार को देखनेवाले ब्रह्मज्ञानी का हनन महापाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाभुरिगतिधृतिः**॥

सबले सध्रीची

बृहदन्यतः पक्ष आसीद्रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची। यद्रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १२॥

१. **बृहत्**=यह विशाल आकाश **अन्यतः पक्षः आसीत्**=एक ओर का पक्ष है **अन्यतः रथन्तरम्**=यह पृथिवी दूसरी ओर का। ये दोनों **सध्रीची**=साथ-साथ चलनेवाले होते हुए **सबले**=बलयुक्त हैं। २. इस रूप में ब्रह्माण्ड को विद्वानों ने देखा **यत्**=जबकि **देवाः**=द्यावापृथिवी के अन्दर स्थित सूर्यादि देवों ने **रोहितम्**=उस सदा से वृद्ध प्रभु को **अजनयन्त**=प्रकट किया। संसार एक शकट है तो द्युलोक उसका एक पक्ष है और पृथिवीलोक दूसरा। इस शकट का वहन करनेवाले 'अनड्वान्' प्रभु हैं। इसप्रकार से संसार को देखनेवाले ज्ञानियों का हनन एक महान् पाप है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—संसाररूप शकट का एक चक्र द्युलोक है तो दूसरा चक्र यह पृथिवीलोक है। प्रभु इसका वहन कर रहे हैं। मिलकर गति करते हुए ये दोनों लोक अत्यन्त बलयुक्त हैं। इस अद्भुत शकट के स्वामी व नियन्ता प्रभु हैं। इनके द्रष्टा ब्रह्मज्ञानियों का हनन प्रभु के प्रति महान् पाप है।

सूचना—शरीर में ये दोनों पक्ष 'प्राण और अपान' है। एक परिवार में ये 'पति व पत्नी' हैं। एक राष्ट्र में 'राजा व प्रजा' हैं। ये मिलकर चलने पर ही सबल होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाविकृतिः**॥

'अग्नि, मित्र, सविता, इन्द्र'

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १३॥

१. **सः वरुणः**=वे प्रभु वरुण हैं—सब अन्धकार का निवारण करनेवाले व वरणीय हैं। **सायम्**=सायंकाल होने पर, अन्धकार के अवसर पर **अग्निः भवति**=अग्नि के समान प्रकाशक

होते हैं। **सः**=वे **प्रातः उद्यन्**=प्रातः उदय होते हुए सूर्य के समान **मित्रः भवति**=प्रमीति से—मृत्यु से हमें बचानेवाले हैं। प्रातः उदय होता हुआ सूर्य रोग-कृमियों का संहार करता है। प्रभु ही हमें नीरोगता प्रदान करते हैं। २. **सः**=वे प्रभु **सविता**=सबके प्रेरक होते हुए **अन्तरिक्षेण याति**=हृदयान्तरिक्ष से गति करते हैं—हृदयस्थरूपेण हमें कर्त्तव्य-कर्मों की प्रेरणा देते हैं। **इन्द्रः भूत्वा**=परमैश्वर्यवाले होते हुए वे प्रभु **दिवं मध्यतः तपति**=मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य के रूप में दीप्त होते हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वे प्रभु अन्धकार में प्रकाश प्राप्त कराते हैं, नीरोगता देनेवाले हैं, हृदयस्थरूपेण सत्कर्मों की प्रेरणा देते हैं, मस्तिष्करूप द्युलोक में वे ज्ञानसूर्य के समान होते हैं। इस रूप में ब्रह्मदर्शन करनेवाले ब्राह्मणों का हनन महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाविकृतिः**॥

सहस्त्र युगपर्यन्त आरोहण

सहस्राक्षं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १४॥

व्याख्या अथर्व० १३.२.३८ पर द्रष्टव्य है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदानिचृदतिधृतिः**॥

पुरुशाकः अत्रि

अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्त्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १५॥

१. **अयं सः देवः**=यह वह प्रकाशमय प्रभु हैं, **यः**=जो **इदं विश्वं भुवनम्**=इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को **जजान**=उत्पन्न करते हैं। ये प्रभु **अप्सु अन्तः**=सब प्रजाओं के हृदयों में निवास करते हैं। ये प्रभु **सहस्त्रमूलः**=इन सहस्त्रों लोकों के मूल हैं। **पुरुशाकः**=महान् शक्तिवाले हैं। **अत्रिः** (अ-त्रि) त्रिगुणातीत हैं अथवा (अदनात्) प्रलयकाल आने पर सब लोकों को स्वयं लील जानेवाले हैं। २. प्रभु ही ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं, अपनी अनन्त शक्ति से वे ही इसका धारण करते हैं और अन्त में इसका अपने में लय कर लेते हैं (जन्माद्यस्य यतः)। इसप्रकार ब्रह्म को देखनेवाले ज्ञानी का हनन प्रभु के प्रति महान् पाप है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु जगत्स्त्रष्टा हैं, सहस्त्रों लोकों के आधार हैं, वे अनन्त शक्तिवाले प्रभु संसार को अन्ततः अपने में लीन कर लेते हैं। ये प्रभु ही सब प्रजाओं के हृदयों में निवास करते हैं। प्रभु के ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी का हनन प्रभु के प्रति महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाऽऽकृतिः**॥

रघुष्यदः हरयः

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १६॥

१. उस **शुभ्रम्**=शुद्ध (शुच्) **देवम्**=प्रकाशमय, **दिवि**=द्युलोक में (सम्पूर्ण आकाश में) **वर्चसा**=दीप्ति से **भ्राजमानम्**=दीप्त होते प्रभु को **रघुष्यदः**=तीव्र गतिवाले, स्फूर्ति के साथ अपने कर्त्तव्यकर्मों के करने में लगे हुए **हरयः**=अज्ञान का हरण (नाश) करनेवाले, ज्ञानकिरणों से दीप्त मनुष्य **वहन्ति**=धारण करते हैं। प्रभु की प्राप्ति 'ज्ञानपूर्वक कर्त्तव्यकर्म-परायण' पुरुषों को ही होती है। २. **यस्य**=जिस प्रभु के **ऊर्ध्वाः तन्वः**=ऊपर होनेवाले शक्तियों के विस्तार (तन् विस्तारे) **दिवं तपन्ति**=द्युलोक को—द्युलोकस्थ नक्षत्रों व सूर्यों को दीप्त करते हैं, वे प्रभु ही **अर्वाङ्**=यहाँ नीचे **सुवर्णैः**=उत्तम वर्णोंवाले **पटरैः**=प्रकाशों से (पट दीप्तौ) **विभाति**=विशिष्टरूप से अथवा विविधरूपों से चमकता है। यहाँ पृथिवी पर भी प्रत्येक पुष्प-फलादि की अपनी निराली ही शोभा है। इस सब शोभा का मूल वे प्रभु ही हैं। इस प्रकार प्रभु की महिमा के द्रष्टा ब्रह्मज्ञानी का हनन ब्रह्म के प्रति महान् अपराध है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु का धारण कर्त्तव्य-कर्मपरायण ज्ञानी पुरुष ही करते हैं। वे प्रभु शुद्ध हैं, प्रकाशमय हैं। प्रभु की शक्ति से ही सूर्यादि पिण्ड दीप्त हो रहे हैं और वे प्रभु ही उत्तम वर्णोंवाले प्रकाशों से इन पुष्प-फलों में दीप्त हो रहे हैं, इस प्रभु के ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी का हनन महान् अपराध है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाकृतिः**॥

एक ज्योतिः

येनादित्यान्हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १७॥

१. **येन**=जिस प्रभु की शक्ति से **हरितः**=जल व रोगों का हरण करनेवाली सूर्य-रश्मियाँ **आदित्यान् संवहन्ति**=रश्मिभेद से भिन्न-भिन्न नामों से कहे जानेवाले इन सूर्यों का वहन करती हैं और **येन यज्ञेन**=जिस उपास्य व संगतिकरण योग्य प्रभु से—प्रभु की उपासना से **बहवः**=बहुत-से **प्रजानन्तः**=ज्ञानी पुरुष **यन्ति**=मोक्ष को प्राप्त होते है। २. **यत्**=जो **एकम्**=अद्वितीय **ज्योतिः**=प्रकाश **बहुधा**=नाना प्रकार से **विभाति**=दीप्त होता है। वस्तुतः वह प्रभु ही सूर्य, चन्द्र में आभारूप से और अग्नि में तेज के रूप से चमकता है। ज्ञानियों का ज्ञान भी वे प्रभु हैं, बुद्धिमानों की बुद्धि भी वे ही हैं। इसप्रकार से ब्रह्म को देखनेवाले का हनन वस्तुतः ब्रह्म के प्रति अपराध ही है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु की शक्ति से ही किरणें सूर्य का वहन करती हैं। प्रभु के सम्पर्क से ही ज्ञानी मोक्ष को प्राप्त होते हैं। प्रभुरूप ज्योति ही भिन्न-भिन्न रूपों में द्योतित होती है। इस ब्रह्म-ज्योति के द्रष्टा का हनन ब्रह्म के प्रति महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाऽऽकृतिः**॥

शरीररूप रथ

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १८॥

१. **सप्त**=सात (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) कर्णादि शरीरस्थ ऋषि **एकचक्रं रथम्**=एक चक्रवाले—अकेले पहिये के समान काम करनेवाले जीवात्मा से युक्त शरीर-रथ को **युञ्जन्ति**=जोतते हैं। जीवात्मारूप चक्रवाले इस शरीर-रथ में ये सप्तर्षि जुते हुए हैं। वस्तुतः **एकः अश्वः**=शरीर में सर्वत्र व्याप्त शक्तिवाला अकेला जीव (अश् व्याप्तौ) **सप्तनामः**=इन सात ऋषियों की ओर झुकनेवाला—इन सातों को अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त करनेवाला **वहति**=अपने को वहाँ प्राप्त कराता है **यत्र इमा विश्वा भुवना**=जहाँ ये सब भुवन **अधितस्थुः**=स्थित हैं, अर्थात् अपने को परमात्मा में प्राप्त कराता है। २. यह **चक्रम्**=शरीरस्थ कर्त्ता जीव **त्रिनाभि**='सत्त्व, रज व तम' प्रकृति के तीन गुणों के बन्धनवाला है। इन तीन के बन्धन से ही आत्मा को शरीर में आना होता है। वास्तव में यह **अजरम्**=कभी जीर्ण होनेवाला तथा **अनर्वम्**=कभी हिंसित होनेवाला नहीं है (न हन्यते हन्यमाने शरीरे)। शरीर ही उत्पन्न व नष्ट हुआ करता है, वह चक्र (कर्त्ता) तो 'न जायते म्रीयते वा कदाचित्' न पैदा होता है, न मरता है। शरीर-रथ की अद्भुत रचना को समझनेवाला ब्रह्मज्ञानी आदरणीय है। उसका हनन ब्रह्म के प्रति महान् अपराध है।

भावार्थ—इस शरीर-रथ में 'दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख' ये सात ऋषि जुड़े हुए हैं। जीवात्मा यहाँ कर्त्ता है। वह 'सत्त्व, रज व तम' के बन्धन में पड़कर शरीर में आता-जाता है। वस्तुतः वह न जीर्ण होनेवाला, न मरनेवाला है। इस आत्मतत्त्व को समझनेवाले ज्ञानी का हनन महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाभुरिगाकृतिः**॥

पिता देवानां, जनिता मतीनाम्

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १९॥

१. **अष्टधा**='यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि' इन आठ योगांगों द्वारा युक्त जीव द्वारा अपने साथ जोड़ा गया **वह्निः**=संसार शकट का-वहन करनेवाला **उग्रः**=तेजस्वी प्रभु ही **देवानां पिता**=सूर्यादि सब देवों का रक्षक है। वह प्रभु ही **मतीनाम् जनिता**=बुद्धियों का प्रादुर्भाव करनेवाला है। २. **ऋतस्य**=सृष्टियज्ञ के **तन्तुम्**=सूत्र को **मनसा मिमानः**=मनःशक्ति, संकल्प से ही निर्माण करता हुआ मातरिश्वा मातृरूप प्रकृति में गति देनेवाला (श्वि गतौ) वह प्रभु **सर्वाः दिशः पवते**=सब दिशाओं में व्याप्त हैं। इसप्रकार प्रभु के ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी का हनन प्रभु के प्रति महान् अपराध है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—यमादि के पालन से समाधि द्वारा जीव से प्राप्त किये जानेवाले प्रभु संसार-शकट के धारक हैं, तेजस्वी हैं, सूर्यादि के रक्षक हैं, बुद्धियों के जनक हैं। सृष्टियज्ञ के तन्तु को संकल्प से ही निर्मित करनेवाले हैं। प्रकृति को गति देनेवाले हैं, वे प्रभु सब दिशाओं में व्याप्त हैं। इस ब्रह्म के ज्ञाता का सदा आदर ही करना चाहिए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽत्यष्टिः**॥

अन्तः गायत्र्याम्

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ २०॥

१. उस **सम्यञ्चम्**=सम्यक् गति करनेवाले **तन्तुम्**=विस्तृत सूत्र के **अनु**=आश्रय पर ही **सर्वाः प्रदिशः**=समस्त दिशाएँ आश्रित हैं। ये समस्त दिशाएँ—दिशास्थ प्राणी **गायत्र्याम् अन्तः**=(गयाः प्राणाः तान् तत्रे) प्राणों की रक्षिका गायत्री में है। गायत्री इनकी माता के समान है, वह इनके जीवन का निर्माण करनेवाली है। ये सब जीव **अमृतस्य गर्भे**=उस अमृत प्रभु के गर्भ में हैं। इसप्रकार ब्रह्म को देखनेवाले ज्ञानी का हनन महान् अपराध है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—सब दिशाएँ सम्यक् गतिवाले ऋत के तन्तु में आश्रित हैं। सब प्राणियों के जीवन का निर्माण करनेवाली यह गायत्री है। सब प्राणी उस अमृत प्रभु के गर्भ में हैं। इसप्रकार ज्ञान देनेवाले ब्राह्मण की हत्या सर्वमहान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाऽऽकृतिः**॥

तीन

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ २१॥

१. **निम्रुचः**=निम्नगतियाँ (नि-मुच् गतौ) **तिस्रः**=तीन हैं—तीन बातें हमारी अधोगति का कारण बनती हैं, वे हैं—'काम, क्रोध और लोभ'। **ह**=निश्चय से **व्युषः तिस्रः**=(वि उष दाहे) दोषों को दग्ध करनेवाली भी तीन बातें हैं, वे है—'ज्ञान, कर्म और उपासना'। **त्रीणि रजांसि**=तीन ही लोक हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। शरीर में ये तीन लोक—'देह, हृदय व मस्तिष्क' हैं। 'काम' देह को विनष्ट कर देता है, 'क्रोध' हृदय को तथा 'लोभ' मस्तिष्क को। 'कर्म' शरीर को ठीक रखता है, 'उपासना' हृदय को तथा 'ज्ञान' मस्तिष्क को। हे **अङ्ग**=प्रिय! **दिवः तिस्रः**=ज्ञान भी तीन हैं—प्रकृति का ज्ञान, जीव का ज्ञान व परमात्मा का ज्ञान। प्रकृति के ज्ञान से, प्रकृति का ठीक उपयोग होने पर रोग नहीं आते। जीव को समझने पर, जीव के साथ ठीक व्यवहार होने पर झगड़े नहीं होते। प्रभु की सर्वव्यापकता का ज्ञान होने पर पापवृत्ति हमें आक्रान्त नहीं करती। २. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! हम **त्रेधा**=तीन प्रकार से **ते जनित्रं विद्म**=तेरे प्रादुर्भाव को जानते हैं। तम, रज व सत्त्व से ऊपर उठकर, गुणातीत बनकर ही हम आपको जान पाते हैं। प्रमाद, आलस्य, निद्रा से ऊपर उठना ही तमोगुण से ऊपर उठना है। तृष्णा से ऊपर उठना ही रजस् से ऊपर उठना है तथा सुखसंग से ऊपर उठना ही सत्त्वातीत होना हैं। इस स्थिति में ही हम प्रभु को प्राप्त करते हैं। **देवानां जनिमानि त्रेधा विद्म**='अग्नि, वायु, सूर्य' आदि देवों के 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' में होनेवाले तीन भागों में विभक्त प्रादुर्भावों को हम जानते हैं। ग्यारह पृथिवी के देव हैं, ग्यारह अन्तरिक्ष के व ग्यारह द्युलोक के। इसप्रकार प्रभु की सृष्टि को समझनेवाले ब्रह्मज्ञानी को मारना एक महान् पाप है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—'काम, क्रोध, लोभ' अधोगति के कारण बनते हैं। 'ज्ञान, कर्म, उपासना' दोषदहन के साधन हैं। 'देह, हृदय व मस्तिष्क' यह अध्यात्म की त्रिलोकी है। 'प्रकृति, जीव व प्रभु' का ज्ञान ही त्रिविध ज्ञान है। तम, रज व सत्त्व से ऊपर उठकर हम प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। अग्नि, वायु, सूर्यादि देव पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक में ग्यारह-ग्यारह की संख्या में प्रादुर्भूत होते हैं। इसप्रकार हम प्रभु की सृष्टि में प्रभु की महिमा को देखनेवाले को आदर दें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽत्यष्टिः**॥

पृथिवी का आच्छादन, अन्तरिक्ष में समुद्र का स्थापन

वि य और्णोत्पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ २२॥

१. **यः**=जो प्रभु **जायमानः**=प्रादुर्भूत होते हुए **पृथिवीं वि और्णोत्**=हमारी इस शरीररूप पृथिवी को विशेषरूप से आच्छादित करते हैं। जब भी हम प्रभु के प्रकाश को देखेंगे—प्रभु का हममें प्रादुर्भाव होगा तब वे हमारे शरीरों के कवच होंगे। उस समय हमारे शरीर रोगों से आक्रान्त न हो पाएँगे। वे प्रभु ही प्रादुर्भूत होते हुए **अन्तरिक्षे**=हमारे हृदयान्तरिक्ष में **समुद्रम्**=ज्ञानसमुद्र को **आ अदधात्**=सर्वथा स्थापित करते हैं। प्रभु का प्रादुर्भाव हुआ तो सब अन्धकार समाप्त हो जाता है और प्रकाश-ही-प्रकाश हो जाता है। ब्रह्म को इस रूप में जाननेवाले ब्राह्मण का हनन ब्रह्म के प्रति अपराध है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हम प्रभु को अपने में प्रादुर्भूत करने का प्रयत्न करें। प्रभु हमारे शरीररूप पृथिवी के कवच होंगे और हमारे हृदयान्तरिक्ष में ज्ञानसमुद्र की स्थापना करेंगे। ब्रह्म को इस रूप में जाननेवाले ब्राह्मण का हनन महापाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाविकृतिः**॥

क्रतुभिः केतुभिः

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितो ३ र्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्या ऽर्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद्रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ २३॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **क्रतुभिः**=यज्ञों के द्वारा तथा **केतुभिः**=प्रकाश की रश्मियों के द्वारा **हितः**=हृदयदेश में स्थापित किये जाते हो। **अर्कः**=आप पूजनीय हो, **समिद्धः**=ज्ञान से दीप्त हो। आप **दिवि**=अपने प्रकाशमय स्वरूप में **उत् अरोचथाः**=उत्कर्षेण दीप्त होते हो। २. **यत्**=जब **देवाः**=सूर्यादि देव **रोहितम्**=उस सदा से वृद्ध प्रभु को **अजनयन्त**=प्रादुर्भूत करते हैं—उस प्रभु की महिमा को हमें दिखलाते हैं, तब ये **मरुतः**=प्राणसाधना करनेवाले **पृश्निमातरः**=ज्ञान की वाणियों को अपनी माता के समान बनानेवाले, अर्थात् वेदमाता से सतत प्रेरणा प्राप्त करनेवाले ये ज्ञानी **किम् अभि आर्चन्**=उस अनिर्वचनीय प्रभु का ही पूजन करते हैं। इन प्रभुपूजक ब्रह्मज्ञानियों का हनन प्रभु के प्रति महान् अपराध है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—वे प्रभु यज्ञों व ज्ञानों के द्वारा हृदयदेश में समिद्ध किये जाते हैं। वे पूजनीय, ज्ञानदीप्त प्रभु अपने प्रकाशमयस्वरूप में दीप्त हो रहे हैं। सूर्यादि देव इस प्रभु को प्रकाशित करते

हैं। प्राणसाधक, ज्ञानप्रवण मनुष्य उस अनिर्वचनीय प्रभु का पूजन करते हैं। इन ब्रह्मपूजक ज्ञानियों का हनन महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदाकृतिः**॥

आत्मदाः बलदाः

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यो ३ स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिं मुञ्च पाशान्॥ २४॥

१. **यः आत्मदाः**=जो जीवहित के लिए अपने को दे डालनेवाले हैं, जो निरन्तर जीवहित के लिए सृष्टि-निर्माण, धारण व प्रलय आदि कर्मों में प्रवृत्त हैं। **(यः) बलदाः**=जो सब प्रकार की आवश्यक शक्तियों को प्राप्त करानेवाले हैं। **यस्य**=जिस प्रभु का **विश्वे**=सब लोग **उपासते**=उपासन करते हैं। **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यस्य प्रशिषम्**=जिसकी आज्ञा का उपासन करते हैं, अर्थात् जिसकी आज्ञाओं के अनुसार कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। **यः**=जो प्रभु **अस्य**=इस **द्विपदः**=दो पाँववाले मनुष्यों के तथा **यः**=जो **चतुष्पदः**=चार पाँववाले इन गवादि पशुओं के **इशे**=ईश हैं, अर्थात् इनमें उस-उस ऐश्वर्य को स्थापित करनेवाले हैं। मनुष्यों में बुद्धि, तेज व बल को व अद्भुत शक्तियों को स्थापित करनेवाले वे प्रभु ही हैं। **तस्य**=उस प्रभु के प्रति यह महान् अपराध है कि इसप्रकार के ब्रह्मज्ञानी की हत्या की जाए। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु अपने को जीवहित के लिए दिये हुए हैं। वे हमें बल प्राप्त कराते हैं। सब प्रभु का उपासन करते हैं। देव प्रभु के शासन में चलते हैं। मनुष्यों में व पशुओं में जो भी ऐश्वर्य है वह सब उस प्रभु का है। इस प्रभु के ज्ञाता का हनन प्रभु के प्रति महान् पाप है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाविकृतिः**॥

चतुष्पात् मन

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन्पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिं मुञ्च पाशान्॥ २५॥

१. **एकपात्**=वे एकरस प्रभु **द्विपदः**=दो पाँववाले मनुष्य से **भूयः विचक्रमे**=अधिक गति व पराक्रमवाले हैं। **द्विपात्**=ये द्विपात् मनुष्य **त्रिपादम्**=लोक त्रयीरूप तीन पादोंवाले सूर्य के पश्चात् **अभि एति**=पीछे गतिवाला होता है, अर्थात् सूर्य उदय के साथ इसके कार्य प्रारम्भ होते हैं और सूर्यास्त के साथ इसके कार्य समाप्त होते हैं। (पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन)। सूर्य के अनुसार कर्म करते हुए मनुष्य हिंसित नहीं होते। २. **द्विपादं अभिस्वरे**=मनुष्यों के शासन में (स्वृ शब्दे) **चतुष्पात्**='मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार' के रूप में चतुर्विध गतिवाला यह अन्तःकरण **पङ्क्तिं उपतिष्ठमानः**=ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक व कर्मेन्द्रिय पञ्चक में उपस्थित होता हुआ इन इन्द्रियों का अनुविधान करता हुआ (यन्मनोऽविधियते) **संपश्यन् चक्रे**=सम्यक् देखता हुआ कर्मों को करता है। मनुष्य-शरीर में यह 'अन्तःकरण' एक अद्भुत रचना है। यह आत्मा और इन्द्रियों का मेल करनेवाला है। इसके द्वारा ही इन्द्रियों के सब कार्य होते हैं। इस अद्भुत रचना को देखनेवाला ज्ञानी ब्रह्म की महिमा का अनुभव करता है। इस ब्रह्मज्ञ की हत्या ब्रह्म के प्रति

महान् पाप है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—सारे मनुष्यों से भी एक प्रभु का पराक्रम अधिक है। मनुष्य सूर्य के व्रत में चलकर अहिंसित रहता है। मानव-शरीर में मन की अद्भुत रचना को देखनेवाला ज्ञानी ब्रह्म की महिमा का अनुभव करता है। इस ज्ञानी का आदर करना योग्य है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'कृष्णा' का पुत्र 'अर्जुन' (रात्रि का पुत्र सूर्य)

कृ॒ष्णाया॑: पु॒त्रो अर्जु॑नो॒ रात्र्या॑ व॒त्सो ऽजायत।
स ह॒ द्याम॒धि रोह॑ति रु॒हो रु॒रोह॒ रोहि॑तः॥ २६॥

१. (रात्रिर्वै कृष्णा शुक्लवत्सा, तस्या असावादित्यो वत्सः—शत० ९.२.३.३) **कृष्णायाः रात्र्याः**=इस कृष्ण वर्णवाली—चारों ओर अन्धकारमयी रात्रि का **अर्जुनः पुत्रः**=श्वेत वर्ण का यह सन्तानरूप सूर्य **वत्सः**=प्रभु की महिमा का प्रतिपादन करनेवाला (वदति) **अजायत**=हुआ है। यह सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता हुआ प्रभु की महिमा का प्रकाश कर रहा है। सूर्य प्रभु की सर्वमहति विभूति है। **सः ह**=यह सूर्य निश्चय से **द्यां अधिरोहति**=इस द्युलोक में आरोहण करता है। यह **रोहितः**=तेजस्वी सूर्य ही **रुहः सः रुरोह**=सब वनस्पतियों को प्रादुर्भूत करता है। सूर्य की किरणों के अभाव में बीज अंकुरित नहीं हो पाते। जहाँ सूर्य की किरण नहीं, वहाँ वनस्पति भी नहीं। सूर्य ही इनका प्रादुर्भाव करता हुआ इनमें प्राणदायी तत्त्वों का स्थापन करता है। यह सूर्य वस्तुतः प्रभु की अद्भुत महिमा का प्रतिपादन करता है।

भावार्थ—यह भी प्रभु की अद्भुत महिमा है कि एकदम कृष्णवर्ण की रात्रि का पुत्र-सन्तान श्वेत सूर्य होता है। यह सूर्य सब वनस्पतियों के प्रादुर्भाव का कारण बनता है। इस सूर्य में ज्ञानी पुरुष ब्रह्म की महिमा को देखता है।

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

४. [चतुर्थं सूक्तम्; प्रथमः पर्यायः]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**प्राजापत्यानुष्टुप्**॥

सविता महेन्द्रः

स ए॑ति सवि॒ता स्व॑ र्दि॒वस्पृ॒ष्ठे ऽव॒चाक॑शत्॥ १॥
र॒श्मिभि॒र्नभ॒ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ २॥

१. **सः**=वह **सविता**=सर्वोत्पादक व सर्वप्रेरक **स्वः**=प्रकाशमय प्रभु **दिवः पृष्ठे**=(पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नकस्य पृष्ठात् स्वरज्योतिरगामहम्॥) द्युलोक के पृष्ठ पर—मोक्षधाम में **अवचाकशत्**=प्रकाश करता हुआ **एति**=प्राप्त होता है। मनुष्य जब पृथिवीपृष्ठ से ऊपर उठता है, अर्थात् भोग्य वस्तुओं की कामना से ऊपर उठता है और अन्तरिक्ष से भी ऊपर उठता है, अर्थात् हृदय में यशादि की कामना से भी रहित होता है तब द्युलोक में पहुँचता है, अर्थात् ज्ञानरुचिवाला होता हुआ सदा ज्ञान में विचरण करता है। इसमें भी आसक्तियुक्त न होता हुआ यह स्वरज्योति प्रभु को प्राप्त करता है। यहाँ उसे प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है। २. उस समय **रश्मिभिः**=ज्ञान की किरणों से **नभः आभृतम्**=उसका मस्तिष्करूप द्युलोक व हृदयाकाश आ-भृत हो जाता है—वहाँ प्रकाश-ही-प्रकाश होता है—वहाँ अन्धकार का चिह्न भी नहीं होता। उस समय इसके हृदयदेश में **आवृतः**=प्रकाश से समन्तात् आच्छादित प्रकाशमय **महेन्द्रः**=महान् ऐश्वर्यशाली प्रभु **एति**=प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—जब हम पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक से ऊपर उठकर मोक्षलोक में पहुँचते हैं तब वे प्रभु प्रकाश प्राप्त कराते हुए हमें प्राप्त होते हैं। यह मुक्तात्मा सम्पूर्ण आकाश को प्रभु के प्रकाश से व्याप्त देखता है। इस जीवन्मुक्त के हृदयदेश में प्रकाश से आवृत प्रभु प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**प्राजापत्यानुष्टुप्**॥

धाता, अर्यमा, अग्नि

स धा॒ता स वि॑ध॒र्ता स वा॒युर्न॑भ उच्छि॒ष्टम्। र॒श्मिभि॒र्न॑भ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ ३॥
सो ऽर्य॒मा स वरु॑ण॒ः स रु॒द्रः स म॑हादे॒वः। र॒श्मिभि॒र्न॑भ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ ४॥
सो अ॒ग्निः स उ॒ सूर्य॒ः स उ॑ ए॒व म॑हाय॒मः। र॒श्मिभि॒र्न॑भ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ ५॥

१. **सः**=वे प्रभु **धाता**=सबका निर्माण करनेवाले हैं (धाता)। **सः विधर्ता**=वे विशेषरूप से धारण करनेवाले हैं। **सः वायुः**=वे गति द्वारा सब बुराइयों का गन्धन (हिंसन) करनेवाले हैं। **नभः**=(णह बन्धने) वे सूत्ररूपेण सबको अपने में बाँधनेवाले हैं (मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव)। **उच्छिष्टम्**=वे प्रभु सर्वोन्नत हैं—प्रत्येक उत्तमता की चरमसीमा ही तो प्रभु हैं। इसप्रकार प्रभु-चिन्तन करनेवाले का **नभः**=मस्तिष्करूप द्युलोक **रश्मिभिः आभृतम्**=ज्ञानरश्मियों से आभृत होता है तथा **आवृतः**=ज्ञान से आवृत **महेन्द्रः एति**=प्रभु प्राप्त होते हैं। २. **सः**=वे प्रभु ही **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) हमारे काम-क्रोधादि शत्रुओं का नियमन करनेवाले हैं। **सः वरुणः**=वे वरणीय व श्रेष्ठ हैं। **सः**=वे **रुद्राः**=(रुत्-र) ज्ञानोपदेश करनेवाले हैं। **सः महादेवः**=वे महान् देव हैं। ३. **सः अग्निः**=वे प्रभु ही अग्रणी हैं, हमें आगे ले-चलनेवाले हैं। **उ**=और **सः सूर्यः**=वे प्रभु ही सूर्य हैं, हमें कर्मों में प्रेरित करनेवाले हैं (सुवति कर्मणि) **उ**=और **सः एव**=वे ही **महायमः**=सर्वमहान् नियन्ता हैं। इस प्रकार प्रभु का स्मरण करनेवाला पुरुष अपने हृदयाकाश को ज्ञानरश्मियों से परिपोषित करता है और इसे ज्ञान से आवृत प्रभु प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम 'धाता, विधर्ता' आदि नामों से प्रभु का स्मरण करते हुए वैसा ही बनने का प्रयत्न करें। परिणामतः हमें प्रकाश प्राप्त होगा और हमारा हृदय प्रभु का अधिष्ठान बनेगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**प्राजापत्यानुष्टुप्**॥

दश वत्साः

तं व॒त्सा उप॑ तिष्ठन्त्येकशी॒र्षाणो॒ यु॒ता दश॑। र॒श्मिभि॒र्न॑भ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ ६॥
प॒श्चात्प्राञ्च॒ आ त॑न्वन्ति॒ यदु॑दे॒ति॒ वि भा॑सति। र॒श्मिभि॒र्न॑भ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ ७॥
तस्यै॒ष मारु॑तो ग॒णः स ए॑ति शि॒क्याकृ॑तः॥ ८॥
र॒श्मिभि॒र्न॑भ आभृ॑तं महे॒न्द्र ए॒त्यावृ॑तः॥ ९॥

१. **तम्**=उस परमात्मा को **एकशीर्षाणः**=एक आत्मारूप सिरवाले **युताः**=परस्पर मिले हुए—मिलकर कार्य करते हुए **दश वत्साः**=दस अत्यन्त प्रिय प्राण **उपतिष्ठन्ति**=समीपता से उपस्थित होते हैं। शरीर में प्राण 'प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय', इन दस भागों में विभक्त होकर कार्य करता है। ये शरीर में प्रियतम वस्तु हैं, इनके साथ ही जीवन है। इनकी साधना से इनका अधिष्ठाता 'आत्मा' प्रभु की उपासना करनेवाला बनता है। २. ये प्राण **पश्चात्**=पीछे व **प्राञ्चः**=आगे गतिवाले **आतन्वन्ति**=शरीर की शक्तियों का विस्तार करते हैं। इस प्राणसाधना को करता हुआ जीव **यत् उदेति**=जब उत्कर्ष को प्राप्त करता है तब **विभासति**=विशिष्ट दीप्तिवाला होता है। वस्तुतः यह प्राणसाधक प्रभु की दीप्ति से

दीप्ति-सम्पन्न बनता है। ३. **एष मारुतः गणः**=यह प्राणों का गण **तस्य**=उस प्रभु का ही है। प्रभु ही जीव के लिए इसे प्राप्त कराते हैं। **सः**=वे प्रभु **शिक्याकृतः**=इन प्राणों का आधारभूत छींका बना हुआ **एति**=इस साधक को प्राप्त होता है। वस्तुतः प्रभु की उपासना प्राणशक्ति की वृद्धि का कारण बनती है। प्राणसाधना द्वारा हम प्रभु का उपासन कर पाते हैं।

भावार्थ—आत्मा अधिष्ठाता है, दस प्राण उसके वत्स हैं, प्रियतम वस्तु हैं। ये पीछे-आगे शरीर में सर्वत्र शक्ति का विस्तार करते हैं। इन प्राणों का आधार प्रभु हैं। ये प्राण हमें प्रभु-प्राप्ति में सहायक होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**१०-११ प्राजापत्यानुष्टुप्, १२ विराड्गायत्री, १३ आसुर्युष्णिक्**॥

एकः एकवृत्, एकः एव

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः॥ १०॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न॥ ११॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥ १२॥
एते अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति॥ १३॥

१. **तस्य**=उस प्रभु के **इमे**=ये **नव**=नौ **कोशाः**=निधिरूप इन्द्रियाँ—दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें, मुख, गुदा व उपस्थ **विष्टम्भाः**=शरीर के विशिष्ट स्तम्भ हैं ये **नवधा हिताः**=नौ प्रकार से नौ स्थानों में पृथक्-पृथक् स्थापित हुए हैं। इनकी रचना में उस प्रभु की अद्भुत् महिमा दृष्टिगोचर होती है। इनके द्वारा **सः**=वे प्रभु **प्रजाभ्यः विपश्यति**=प्रजाओं का विशेषरूप से ध्यान करते हैं। **यत् च प्राणयति यत् च न**=जो भी प्रजाएँ प्राणधारण कर रही हैं और जो प्राणधारण नहीं कर रही हैं, उन सबको प्रभु धारण कर रहे हैं। २. **तम्**=उस प्रभु को **इदं सः**=वह शत्रुमर्षक बल **निगतम्**=निश्चय से प्राप्त है। **सः एषः एकः**=वे ये प्रभु एक हैं, **एकवृत्**=एक ही हैं (एकः वर्तते)। **एकः एव**=निश्चय से एक ही हैं। **अस्मिन्**=इस प्रभु में **एते देवाः**=ये सब देव **एकवृतः (एकस्मिन् वर्तन्ते)**=एक स्थान में होनेवाले **भवन्ति**=होते हैं। वे प्रभु सब देवों के आधार हैं, प्रभु से ही तो उन्हें देवत्व प्राप्त हो रहा है।

भावार्थ—प्रभु ने शरीर में नौ इन्द्रियों को नौ कोशों के रूप में स्थापित किया है। वे प्रभु चराचर जगत् का ध्यान करते हैं। प्रभु को शत्रुमर्षक बल प्राप्त है। प्रभु एक हैं। सब देव इस प्रभु के आधारवाले हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्; द्वितीयः पर्यायः]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**१४ भुरिक्साम्नीत्रिष्टुप्, १५ आसुरीपङ्क्तिः**॥

कीर्तिः च यशः च

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च॥ १४॥
य एतं देवमेकवृतं वेद॥ १५॥

यः=जो भी **एतं देवम्**=इस प्रकाशमय प्रभु को **एकवृतं वेद**=एकत्वेन वर्तमान जानता है, अर्थात् जो प्रभु की अद्वितीय सत्ता का अनुभव करता है, उसे **कीर्तिः च**=प्रभु-कीर्तन से प्राप्त होनेवाला यश, **यशः च**=लोकहित के कर्मों से प्राप्त होनेवाला यश, **अम्भः च**=(अभि शब्दे) ज्ञानजल, **नभः च**=प्रबन्धसामर्थ्य, **ब्राह्मणवर्चसं च**=ब्रह्मतेज, **अन्नं च**=अन्न **अन्नाद्यं च**=और अन्न

के खाने का सामर्थ्य—ये सब वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, अर्थात् प्रभु की अद्वितीय सत्ता का साक्षात् करनेवाला व्यक्ति भौतिक व आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोणों से उत्कृष्ट जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक 'यशस्वी, ज्ञान व शक्तिसम्पन्न, ऐश्वर्यशाली व स्वस्थ' जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**१६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १७-१८ आसुरीगायत्री**॥

अद्वितीय प्रभु

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ १६॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ १७॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ १८॥

१. **ये**=जो **एतं देवम्**=इस प्रकाशमय प्रभु को **एकवृतं वेद**=एकत्वेन वर्तमान जानता है व जानता है कि वह प्रभु **न द्वितीयः**=न दूसरा, **न तृतीयः**=न तीसरा और **न चतुर्थः अपि**=न चौथा भी **उच्यते**=कहा जाता है। **न पञ्चमः**=न पाँचवाँ, **न षष्ठः**=न छठा, **न सप्तमः**=न सातवाँ भी **उच्यते**=कहा जाता है। **न अष्टमः**=न आठवाँ, **न नवमः**=न नौवा, **न दशमः अपि**=और न ही दसवाँ **उच्यते**=कहा जाता है। प्रभु एक हैं और एक ही हैं।

भावार्थ—उस सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् प्रभु की सत्ता अद्वितीय है। दो की आवश्यकता होते ही प्रभु की सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमत्ता विहत हो जाती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**१९ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, २० विराड्गायत्री, २१ अनुष्टुप्**॥

सर्वाधार प्रभु

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ १९॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ २०॥
सर्वे अस्मिन्देवा एकवृतो भन्वित। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ २१॥

१. **सः**=वे प्रभु **यत् च प्राणति यत् च न**=जो प्राणधारण करता है और प्राणधारण नहीं करता **सर्वस्मै**=उस सबके लिए, अर्थात् सब चराचर व जंगम-स्थावर का **विपश्यति**=विशेषरूप से ध्यान करते हैं। २. **तम्**=उस प्रभु को **इदं सः**=यह शत्रुमर्षक बल **निगतम्**=निश्चय से प्राप्त है। **सः एषः**=वे ये प्रभु **एकः**=एक हैं **एकवृत्**=एकत्वेन वर्तमान हैं, **एकः एव**=एक ही हैं **सर्वे देवाः**=सूर्यादि सब देव **अस्मिन्**=इस प्रभु में **एकवृतः भवन्ति**=एक आधार में वर्तमान होते हैं। इन सबका आधार वह अद्वितीय प्रभु ही है।

भावार्थ—प्रभु सब चराचर का ध्यान करते हैं, सम्पूर्ण शत्रुमर्षक बल को प्राप्त हैं। वे प्रभु एक हैं, एक ही हैं। वे ही सब देवों के एक आधार हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्; तृतीयः पर्यायः]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**२२ भुरिक्प्राजापत्यात्रिष्टुप्, २३ आर्चीगायत्री, २४ त्रिष्टुप्**॥

ब्रह्म च तपः च

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च
ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च। य एतं देवमेकवृतं वेद॥ २२॥

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च॥ २३॥
य एतं देवमेकवृतं वेद॥ २४॥

१. **यः**=जो भी **एतं देवम्**=इस प्रकाशमय प्रभु को **एकवृतं वेद**=एकत्वेन वर्तमान जानता है, वह **ब्रह्म च तपः च**=वेदज्ञान व तपस्वी जीवन को **कीर्तिं च यशः च**=प्रभु कीर्तन से प्राप्त होनेवाले यशः को तथा लोकहित में प्रवृत्तिजन्य यश को, **अम्भः च नभः च**=ज्ञानजल को व प्रबन्ध-सामर्थ्य को **ब्रह्मवर्चसं च**=ब्रह्मतेज को, **अन्नं च अन्नाद्यं च**=अन्न को व अन्न-भक्षण सामर्थ्य को, **भूतं च भव्यं च**=यशस्वी भूत व यशस्वी भविष्य को **श्रद्धा च रुचिः च**=उत्तम कर्मों में श्रद्धा व प्रीति को और परिणामतः **स्वर्गः च स्वधा च**=सुखमय स्थिति व आत्मधारण-शक्ति को प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्रभु की अद्वितीय सत्ता में विश्वास रखनेवाला व्यक्ति भौतिक व आध्यात्मिक जीवन को उत्कृष्ट बनाता हुआ यशस्वी जीवनवाला बनता है। इसके भूत व भविष्यत् दोनों ही सुन्दर होते हैं। वर्तमान में वह उत्तम कर्मों में श्रद्धा व प्रीतिवाला होकर सुखमय स्थिति व आत्मधारणशक्ति को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—२५ **एकपदाऽऽसुरीगायत्री, २६ आर्च्युनुष्टुप्, २७-२८ प्राजापत्याऽनुष्टुप्**॥

मृत्यु अमृतम्

स एव मृत्युः सो ३ मृतं सो ३ भ्वं१ स रक्षः॥ २५॥
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेयो नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः॥ २६॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते॥ २७॥
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह॥ २८॥

१. **सः एव**=वे अद्वितीय प्रभु ही **मृत्युः**=मृत्यु हैं—जीवों को प्राणों से वियुक्त करनेवाले व नया शरीर प्राप्त करानेवाले हैं। **सः अमृतम्**=वे ही मोक्षधाम को प्राप्त करानेवाले हैं। **सः अभ्वम्**=वे महान् हैं और **सः रक्षः**=वे ही सबके रक्षक हैं। २. **सः रुद्रः**=वे प्रभु ही ज्ञान देनेवाले हैं। **वसुदेये**=सब वस्तुओं के देने के कार्य में **वसुवनिः**=सब वस्तुओं का संभजन करनेवाले हैं (विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः) तथा **नमो वाके**='नमः' वचनपूर्वक किये जानेवाले ब्रह्मयज्ञ में **वषट्कारः**='स्वाहा' करनेवाले के रूप में **अनुसंहितः**=निरन्तर स्मरण किये जाते हैं। प्रभु ने जीवहित के लिए अपने को दे डाला है—सर्वमहान् त्याग करनेवाले प्रभु ही हैं। वे 'आत्मदाः' हैं। ३. **इमे सर्वे यातवः**=ये सब गतिशील पिण्ड—सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि **तस्य**=उस प्रभु की **प्रशिषम् उपासते**=आज्ञा का उपासन करते हैं। ये सूर्यादि प्रभु के शासन में गति कर रहे हैं। **अमू सर्वा नक्षत्रा**=वे सब नक्षत्र **चन्द्रमसा सह**=चन्द्रमा के साथ **तस्य वशे**=उसके वश में हैं। प्रभु सब लोक-लोकान्तरों के अधिपति हैं और सब पिण्ड उस प्रभु के प्रशासन में गतिवाले हो रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु ही मृत्यु हैं, वे ही अमृत हैं। वे महान् हैं, रक्षक हैं, ज्ञानदाता हैं, वसुओं को प्राप्त करानेवाले हैं। त्यागपुञ्ज वे प्रभु नमस्करणीय हैं। सब पिण्ड प्रभु के शासन में गति कर रहे हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्; चतुर्थः पर्यायः]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—२९, ३३ **आसुरीगायत्री**, ३०, ३२ **प्राजापत्याऽनुष्टुप्**, ३१ **विराड्गायत्री**, ३४ **साम्न्युष्णिक्**॥

'दिन व रात्रि में, अन्तरिक्ष व वायु में, द्युलोक व दिशाओं में' प्रभु का प्रकाश

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत॥ २९॥
स वै रात्र्या अजायत तस्माद्रात्रिरजायत॥ ३०॥
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत॥ ३१॥
स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत॥ ३२॥
स वै दिवो ऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत॥ ३३॥
स वै दिग्भ्यो ऽजायत तस्माद्दिशो ऽजायन्त॥ ३४॥

१. **सः वा**=वे प्रभु निश्चय से **अह्नः अजायत**=दिन से प्रादुर्भूत हो रहे हैं—दिन की रचना में प्रभु की महिमा का प्रकाश हो रहा है। **तस्मात्**=उस प्रभु से ही तो **अहः अजायत**=यह दिन प्रकट किया गया है। प्रभु ने दिन (अ-हन्) का निर्माण करके मनुष्यों को एक भी क्षण नष्ट न करते हुए आगे बढ़ने का अवसर दिया है। २. इसीप्रकार **सः वै**=वे प्रभु निश्चय से **रात्र्या अजायत**=रात्रि से प्रादुर्भूत हो रहे हैं। किस प्रकार रात्रि रमयित्री=हमारी सारी थकावट को दूर करके हमें प्रफुल्लित कर देती है। **तस्मात् रात्रिः अजायत**=उस प्रभु से ही यह रात्रि प्रादुर्भूत की गई है। ३. **सः वा**=वे प्रभु निश्चय से **अन्तरिक्षात् अजायत**=इस 'वायु, चन्द्र, मेघ व विद्युत्' के आधारभूत अन्तरिक्ष से प्रकट हो रहे हैं। **तस्मात्**=उस प्रभु से ही **अन्तरिक्षं अजायत्**=यह अन्तरिक्ष प्रादुर्भूत किया गया है। ४. **सः वै**=वे प्रभु निश्चय से **वायोः अजायत**=वायु से प्रादुर्भूत हो रहे हैं। प्राणिमात्र के जीवन की कारणभूत ये वायु भी उस प्रभु की अद्भुत ही सृष्टि है। **तस्मात्**=उस प्रभु से ही **वायुः अजायत**=उस जीवनप्रद वायु का प्रादुर्भाव किया गया है। ५. **सः वै**=वे प्रभु निश्चय से **दिवः**=सूर्य के आधारभूत इस द्युलोक से **अजायत**=प्रादुर्भूत महिमावाले हो रहे हैं। सम्पूर्ण प्रकाशमय व प्राणशक्ति का स्रोत कितना अद्भुत है यह सूर्य! **तस्मात्**=उस प्रभु से ही **द्यौः**=सूर्य-प्रकाश से देदीप्यमान यह द्युलोक **अध्यजायत**=उत्पन्न किया गया है। ६. **सः वै**=वे प्रभु निश्चय से **दिग्भ्यः**=इन प्राची आदि दिशाओं से **अजायत**=प्रादुर्भूत महिमावाले हो रहे हैं। उत्तर-दक्षिण में किस प्रकार चुम्बकीय शक्ति कार्य करती है और किस प्रकार सूर्यादि सब पिण्ड पूर्व से पश्चिम की ओर गति कर रहे हैं? यह सब-कुछ अद्भुत ही है। **तस्मात्**=इस प्रभु से **दिशः अजायन्त**=इन दिशाओं का प्रादुर्भाव किया गया है।

भावार्थ—दिन व रात्रि में, अन्तरिक्ष व वायु में, द्युलोक व दिशाओं में सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रकाश हो रहा है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—३५, ३६ **प्राजापत्याऽनुष्टुप्**, ३७, ३८ **साम्न्युष्णिक्**, ३९ **आसुरीगायत्री**॥

'भूमि, अग्नि, जल, ऋचाओं तथा यज्ञों में' प्रभु की महिमा का प्रकाश

स वै भूमेरजायत तस्माद्भूमिरजायत॥ ३५॥
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत॥ ३६॥

स वा अ॒द्भ्यो ऽजायत॒ तस्मा॒दापोऽजायन्त॥ ३७॥
स वा ऋ॒ग्भ्यो ऽजायत॒ तस्मा॒दृचोऽजायन्त॥ ३८॥
स वै य॒ज्ञाद॑जायत॒ तस्मा॑द्य॒ज्ञो ऽजायत॥ ३९॥

१. **सः**=वह प्रभु **वै**=निश्चय से **भूमेः**=इस भूमि से **अजायत**=प्रादुर्भूत महिमावाला हो रहा है। यह भूमि अपने से उत्पन्न होनेवाले विविध वनस्पतियों के पत्र-पुष्पों में विविध पुण्यगन्धों को प्राप्त करा रही है। किन्हीं भी दो वनस्पतियों की गन्ध एक-सी नहीं, क्या ही अद्भुत चमत्कार-सा है! **भूमिः**=यह भूमि **तस्मात्**=उस प्रभु से ही तो **अजायत**=उत्पन्न हुई है। २. **सः वा**=वह प्रभु निश्चय से **अग्नेः**=अग्नि से **अजायत**=प्रादुर्भूत होता है। मिलाने व फाड़ने (संयुक्त व वियुक्त करने) की विरोधी शक्तियों को लिये हुए यह अग्नि भी विचित्र ही तत्त्व है। **तस्मात्**=उस प्रभु से ही **अग्निः अजायत**=अग्नि उत्पन्न किया गया है। ३. **सः वा**=वह प्रभु निश्चय से **अद्भ्यः**=सब वनस्पतियों में विविध रसों का संचार करनेवाले जलों से **अजायत**=प्रादुर्भूत महिमावाला होता है। **तस्मात्**=उस प्रभु से ही तो **आपः अजायन्त**=जल प्रादुर्भूत हुए हैं। ४. **सः वा**=यह प्रभु निश्चय से **ऋग्भ्यः**=ऋचाओं से **अजायत**=प्रादुर्भूत हो रहा है। किसप्रकार ये ऋचाएँ सम्पूर्ण प्रकृति-विज्ञान को प्रकट कर रही हैं? **तस्मात् ऋचाः अजायन्त**=उस प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में ही इन ऋचाओं का ज्ञान दिया है। ५. **सः वै**=वह प्रभु निश्चय से **यज्ञात्**=यज्ञ से **अजायत**=प्रकट हो रहा है, किसप्रकार 'यज्ञ' पर्जन्य को उत्पन्न कर वृष्टि द्वारा अन्नों का उत्पादन करके हमारे जीवन का आधार बनता है? **तस्मात् यज्ञः अजायत**=प्रभु से ही प्रजाओं के साथ ही इस यज्ञ का भी प्रादुर्भाव किया गया है। यज्ञ ही जीवन है।

भावार्थ—'भूमि, अग्नि, जल, ऋचाओं व यज्ञों' में इस प्रभु की महिमा का प्रादुर्भाव हो रहा है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**४० आसुरीगायत्री, ४१ साम्नीबृहती, ४२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ४३ आर्षीगायत्री**॥

यज्ञरूप प्रभु

स य॒ज्ञस्तस्य॑ य॒ज्ञः स य॒ज्ञस्य॒ शिर॑स्कृतम्॥ ४०॥
स स्त॑नयति॒ स वि द्यो॑तते॒ स उ॒ अश्मा॑नमस्यति॥ ४१॥
पा॒पाय॑ वा॒ भ॒द्राय॑ वा॒ पुरु॑षा॒यासु॑राय वा॥ ४२॥
यद्वा॑ कृ॒णोष्योष॑धी॒र्यद्वा॒ वर्षं॑सि भ॒द्रया॒ यद्वा॑ ज॒न्यमवी॑वृधः॥ ४३॥

१. **सः**=वे प्रभु **यज्ञः**=यज्ञ हैं, उपास्य हैं। **तस्य यज्ञः**=उस प्रभु का ही यज्ञ है। वस्तुतः यज्ञ प्रभु ही करते हैं। **सः**=वे प्रभु **यज्ञस्य**=यज्ञ के **शिरः कृतम्**=सिर बनाये गये हैं। 'ओ३म्' इस नाम से ही यज्ञों में सब मन्त्रों का आरम्भ किया जाता है (सैषा एकाक्षरा ऋक् 'ओ३म्' तपसोऽग्रे प्रादुर्बभूव। एष वै यज्ञस्य परस्ताद् युज्यते एषा पश्चात् एतया यज्ञस्य तायते—गो० १.१२)। २. **सः**=वे प्रभु ही वस्तुतः इन यज्ञों के होने पर **स्तनयति**=मेघ-गर्जना के रूप में गरजते हैं। **सः विद्योतते**=वे विद्युत् के रूप में द्योतित होते हैं, **उ**=और **सः**=वे ही **अश्मानं अस्यति**=ओलों की वृष्टि करते हैं, ओलेरूप पत्थरों को फेंकते हैं। ३. इसप्रकार वृष्टि के द्वारा सबके लिए अन्न उत्पन्न करते हैं। **पापाय वा**=चाहे वह पापी पुरुष हो **भद्राय वा पुरुषाय**=चाहे कल्याणी प्रकृति का कृती पुरुष हो। वा **असुरस्य**=चाहे असुर हो, आसुरी प्रकृति का हो। आप सभी के लिए **यत्**=जो **वा**=निश्चय से **ओषधीः कृणोषि**=ओषधियों को करते हैं। **यत् वा**=अथवा जो **भद्रया**

वर्षसि=कल्याण के हेतु से वृष्टि करते हैं **यत् वा**=अथवा जो **जन्यं अवीवृधः**=उत्पन्न होनेवाले प्राणियों का वर्धन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु यज्ञ हैं। यज्ञों द्वारा वे वृष्टि करते हैं। वृष्टि के द्वारा वे सभी के लिए अन्नों का उत्पादन करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**४४ साम्न्यनुष्टुप, ४५ आसुरीगायत्री**॥

'अनन्त महिमा' प्रभु

तावांस्ते मघवन्महिमोपो ते तन्व ऽः शतम्॥ ४४॥

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्य ऽर्बुदम्॥ ४५॥

१. हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशाली प्रभो! **तावान् ते महिमा**=उतनी तेरी महिमा है, जितना विस्तृत यह ब्रह्माण्ड है। यह सब तेरी ही तो महिमा है। **उपो**=और **ते तन्वः शतम्**=ये सब आपके ही सैकड़ों शरीर हैं। २. **उपो**=और **ते बध्वे**=आपके नियमों के बन्धन में ये सब पिण्ड **बद्धानि**=बँधे हुए हैं। हे प्रभो! **यदि वा**=अथवा आप **न्यर्बुदम् असि**=असंख्यों ही रूपों में हैं अथवा (अर्व गतौ) सर्वत्र प्राप्त हैं, निरन्तर व्यापक हैं।

भावार्थ—यह ब्रह्माण्ड प्रभु की ही महिमा है। सब लोक-लोकान्तर प्रभु के ही सैकड़ों शरीर हैं। ये सब प्रभु के नियम-बन्धन में बद्ध हैं। प्रभु इन सबमें व्याप्त हो रहे हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्; पञ्चमः पर्यायः]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**४६ आसुरीगायत्री, ४७ यवमध्यागायत्री**॥

विभूः प्रभूः

भूयानिन्द्रो नमुराद्भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः॥ ४६॥

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम्॥ ४७॥

१. **इन्द्रः**=वह परमैश्वर्यशाली प्रभु **न-मुरात्**=न नष्ट होनेवाले कारणजगत् से **भूयान्**=बड़े हैं, अधिक हैं, इसीप्रकार **इन्द्र**=हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप **मृत्युभ्यः**=न मरणधर्मा कार्यजगत् से **भूयान् असि**=अधिक हैं। यह प्रकृति व प्रकृतिजनित सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एक देश में ही है। २. हे प्रभो! आप **अरात्याः**=मानव-शान्ति की नाशिका अशुभवृत्ति से **भूयान्**=अधिक हैं। आपके उपासक को यह 'अराति' विनष्ट शान्तिवाला नहीं कर पाती। हे **इन्द्र**=प्रभो! आप **शच्याः पतिः असि**=शक्ति व प्रज्ञान के पति हैं। **वयम्**=हम **त्वा**=आपको **विभूः**=सर्वव्यापक तथा **प्रभूः**=सर्वशक्तिमान् **इति**=इस रूप में **उपास्महे**=उपासित करते हैं।

भावार्थ—यह कारणजगत् व कार्यजगत् प्रभु के एक देश में है। प्रभु अपने उपासक की शान्ति को नष्ट नहीं होने देते। वे शक्ति व प्रज्ञान के स्वामी हैं। प्रभु सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान् हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**४८ साम्न्युष्णिक्, ४९ निचृत्साम्नीबृहती**॥

प्रभु की कृपादृष्टि

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत॥ ४८॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन॥ ४९॥

१. हे **पश्यत**=सर्वद्रष्टः प्रभो! **नमस्ते अस्तु**=आपके लिए नमस्कार हो। हे **पश्यत**=सबका ध्यान करनेवाले प्रभु **मा पश्य**=आप मुझे देखिए, मुझपर अपनी कृपादृष्टि सदा बनाये रखिए।

आप मुझे **अन्नाद्येन**=अन्न के खाने के सामर्थ्य से, **यशसा**=यश से, **तेजसा**=तेज से तथा **ब्राह्मणवर्चसेन**=ब्रह्मवर्चस् से युक्त कीजिए।

भावार्थ—हे प्रभो! आपकी कृपादृष्टि हमें प्राप्त हो। आप हमें 'अन्नाद्य, यश, तेज व ब्रह्मवर्चस्' प्राप्त कराइए।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५१ विराड्गायत्री**॥

प्रभु सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और शत्रुमर्षक

अम्भो॒ अमो॒ मह॒ः सह॒ इति॒ त्वोपा॑स्महे व॒यम्। नम॑स्ते अस्तु पश्यत॒ पश्य॑ मा पश्यत।
अ॒न्नाद्ये॑न॒ यशा॑सा॒ तेज॑सा ब्रह्मणवर्च॒सेन॑॥ ५०॥
अम्भो॑ अरु॒णं र॑ज॒तं रज॒ः सह॒ इति॒ त्वोपा॑स्महे व॒यम्।
नम॑स्ते अस्तु पश्यत॒ पश्य॑ मा पश्यत। अ॒न्नाद्ये॑न॒ यशा॑सा॒ तेज॑सा ब्राह्मणवर्च॒सेन॑॥ ५१॥

१. हे प्रभो! **वयम्**=हम **त्वा**=आपको **अम्भः**=सर्वव्यापक (आप् व्याप्तौ) **अमः**=सर्वज्ञ (अम् गतौ) **महः**=पूजनीय व शक्तिसम्पन्न तथा **सहः**=शत्रु-सेना का मर्षण करनेवाले **इति**=के रूप में **उपास्महे**=उपासित करते हैं। २. **अम्भः**=सर्वव्यापक **अरुणम्**=प्रकाशस्वरूप **रजतम्**= आनन्दस्वरूप **रजः**=(ज्योतिः रज उच्यते —नि० ४.१९) तेजःस्वरूप, **सहः**=शत्रुओं का मर्षण करनेवाले **इति**=के रूप में **वयम्**=हम **त्वा**=हे प्रभो! आपका **उपास्महे**=उपासन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, पूजनीय, प्रकाशरूप, आनन्दस्वरूप, तेजस्वरूप व शत्रुओं को कुचल देनेवाले हैं।

४. [चतुर्थं सूक्तम्; षष्ठः पर्यायः]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आध्यात्मम्**॥ छन्दः—**५२, ५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ५४ द्विपदाऽर्षीगायत्री, ५५ साम्न्युष्णिक्, ५६ निचृत्साम्नीबृहती**॥

उरुः पृथुः भवद्वसुः

उ॒रुः पृथु॒ः सु॒भूर्भु॒व इति॒ त्वोपा॑स्महे व॒यम्।
नम॑स्ते अस्तु पश्यत॒ पश्य॑ मा पश्यत।
अ॒न्नाद्ये॑न॒ यशा॑सा॒ तेज॑सा ब्राह्मणवर्च॒सेन॑॥ ५२॥
प्रथो॒ वरो॒ व्यचो॑ लो॒क इति॒ त्वोपा॑स्महे व॒यम्।
नम॑स्ते अस्तु पश्यत॒ पश्य॑ मा पश्यत।
अ॒न्नाद्ये॑न॒ यशा॑सा॒ तेज॑सा ब्राह्मणवर्च॒सेन॑॥ ५३॥
भव॑द्वसु॒रिद॒द्वसु॒ः सं॒यद्व॑सु॒रायद्व॑सु॒रिति॒ त्वोपा॑स्महे व॒यम्॥ ५४॥
नम॑स्ते अस्तु पश्यत॒ पश्य॑ मा पश्यत॥ ५५॥
अ॒न्नाद्ये॑न॒ यशा॑सा॒ तेज॑सा ब्राह्मणवर्च॒सेन॑॥ ५६॥

१. हे प्रभो! **वयम्**=हम **त्वा**=आपको **उरुः**=सर्वोत्तम (Excellent) **पृथुः**=सर्वमहान् (Important) **सुभूः**=उत्तम शक्तिरूप में सब पदार्थों में वर्तमान **भुवः**=सबका उत्पत्ति-स्थान **इति**=इस रूप में **उपास्महे**=उपासित करते हैं। २. हे प्रभो! **वयम्**=हम **त्वा**=आपको **प्रथः**=सर्वज्ञ विस्तृत **वरः**=सर्वश्रेष्ठ, वरणीय **व्यचः**=सर्वव्यापक, **लोकः**=सर्वद्रष्टा **इति**=इस रूप में **उपास्महे**=उपासित करते हैं। ३. हे प्रभो! **वयम्**=हम **त्वा**=आपको **भवद्वसुः**=(भवन्ति वसूनि यस्मात्) सब

वसुओं का उद्भव, **इदद्वसुः**=(इन्दन्ति वसवः श्रेष्ठाः यस्मात्) श्रेष्ठों को ऐश्वर्यशाली बनानेवाला, **संयद्वसुः**=पृथिवी आदि सब वसुओं का नियमन करनेवाला, **आयद्वसुः**=सब निवास-साधनों का विस्तार करनेवाला (आयच्छति विस्तारयति इति) **इति**=इस रूप में **उपास्महे**=उपासित करते हैं। ४. हे **पश्यत**=सर्वद्रष्टः प्रभो! **ते नमः अस्तु**=आपके लिए नमस्कार हो। **पश्यत**=हे सर्वद्रष्टः! **मा पश्य**=आप मेरा पालन कीजिए (Look-after) मुझे 'अन्नाद्य, यश, तेज व ब्रह्मवर्चस्' प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभु उरु हैं, पृथु हैं, भवद्वसु हैं। ये सर्वद्रष्टा प्रभु मुझे अन्नाद्य, यश, तेज व ब्रह्मवर्चस् प्राप्त कराएँ।

॥ इति त्रयोदशं काण्डम्॥